दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

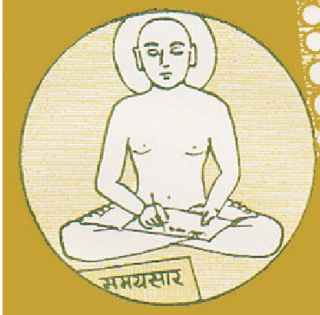

आकिंचणु वउ संगह णिवित्ति।
आकिंचणु वउ सुहझाण सत्ति॥
आकिंचणु वउ विरयलिस ममत्ति।
आकिंचणु रयणत्तय पवित्ति॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक २ [३९८] अगस्त १९७८

आत्मधर्म [३९८]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ नित पीज्यो धीधारी....
२ वचनामृत
३ संपादकीय : उत्तम आकिंचन
४ आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की...
[समयसार प्रवचन]
५ स्वभावपर्याय और विभावपर्याय
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

आकिंचनधर्म परिग्रह की निवृत्ति करनेवाला एवं शुद्धध्यान की शक्तिस्वरूप है, तथा ममत्व को विगलित करनेवाला एवं रत्नत्रय में प्रवृत्ति करानेवाला है। **– महाकवि रइधू**

[मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है]

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [३९८] अंक : २

नित पीज्यो धीधारी, जिनवाणि सुधा सम जानके॥टेक॥
वीर मुखारविंद तें प्रगटी, जन्म-जरा भयटारी।
गौतमादि गुरु उर-घट व्यापी, परम सुरुचि करतारी॥
नित पीज्यो धीधारी०॥१॥

सलिल समान कलिलमल-गंजन, बुधमन रंजनहारी।
भंजन विभ्रम-धूलि-प्रभंजन, मिथ्या जलद निवारी॥
नित पीज्यो धीधारी०॥२॥

कल्यानक तरु उपवन धरनी, तरनी भव-जल तारी।
बन्ध विदारन पेनी छेनी, मुक्ति नसैनी धारी॥
नित पीज्यो धीधारी०॥३॥

स्व-परस्वरूप प्रकाशन को, यह भानुकला अविकारी।
मुनिमनकुमुदनि मोदन शशिभा, शम-सुख सुमन सुवारी॥
नित पीज्यो धीधारी०॥४॥

जाके सेवत बेवत निजपद, नसत अविद्या सारी।
तीन लोकपति पूजत जाको, जान त्रिजग हितकारी।
नित पीज्यो धीधारी०॥५॥

कोटि जीभ सों महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी।
'दौल' अल्पमति केम कहे, यह अधम उधारनहारी॥
नित पीज्यो धीधारी०॥६॥

वचनामृत

वैसे तो 'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक प्रत्येक आत्मधर्म के ग्राहक के पास भेंटस्वरूप पहुँच चुकी है—फिर भी उनके जिन अमृतवचनों की चर्चा पूज्य गुरुदेवश्री बार-बार किया करते हैं, उनमें से कुछ अमृतवचन पूज्य बहिनश्री के जन्म-दिवस के अवसर पर यहाँ दिये जा रहे हैं। स्मरण रहे कि बहिनश्री का जन्मदिवस भादवा सुदी दोज दिनांक २०-८-७८ को सोनगढ़ में बड़े ही उत्साह से मनाया जायेगा।

- हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनंद भरा है, वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परंतु एक आत्मा ही ऐसा है जहाँ अवश्य रुचेगा। इसलिये तू आत्मा की रुचि कर।
- **रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाये तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़ दे। जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता और इससे आत्मा गुप्त नहीं रहता। जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जाएगा? अवश्य ही प्राप्त होगा।**
- जिसप्रकार स्वर्ण को जंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती; उसीप्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्वगुण-रत्नों की चमक प्रगट होगी।
- **ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढलता है। ज्ञानी निजस्वरूप में परिपूर्ण से स्थिर हो जाने को तरसता है। यह विभावभाव हमारा देश नहीं है, इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता, यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनंद, वीर्यादि अनंतगुणरूप परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें शीघ्र ही अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।**

सम्पादकीय

उत्तम आकिंचन | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

सारी दुनिया परिग्रह की चिंता में ही दिन-रात एक कर रही है, मर रही है। कुछ लोग परपदार्थों के जोड़ने में मग्न हैं, तो कुछ लोगों को धर्म के नाम पर उन्हें छोड़ने की धुन सवार है। यह कोई नहीं सोचता कि वे मेरे हैं ही नहीं, मेरे जोड़ने से जुड़ते नहीं और ऊपर-ऊपर से छोड़ने से छूटते भी नहीं। उनकी परिणति उनके अनुसार हो रही है, उसमें हमारे किये कुछ नहीं होता। यह आत्मा तो मात्र उन्हें जोड़ने यो छोड़ने के विकल्प करता है, तदनुसार पाप-पुण्य का बंध भी करता रहता है।

पुण्य के उदय में अनुकूल परपदार्थों का बिना मिलाये भी सहज संयोग होता है। इसीप्रकार पाप के उदय में प्रतिकूल परपदार्थों का संयोग होता रहता है। यद्यपि इसमें इसका कुछ भी वश नहीं चलता तथापि मिथ्यात्व और राग के कारण यह अज्ञानी जगत अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों-वियोगों में अहंबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि किया करता है। यही अहंबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि, ममत्वबुद्धि, मिथ्यात्व नामक सबसे खतरनाक परिग्रह है। सबसे पहले इसे छोड़ना जरूरी है।

जिसप्रकार वृक्ष के पत्तों के सींचने से पत्ते नहीं पनपते, वरन् जड़ को सींचने से पत्ते पनपते हैं; उसीप्रकार समस्त अंतरंग-बहिरंग परिग्रह मिथ्यात्वरूपी जड़ से पनपते हैं। यदि हम चाहते हैं कि पत्ते सूख जावें तो पत्तों को तोड़ने से कुछ नहीं होगा, नवीन पत्ते निकल आवेंगे; पर यदि जड़ ही काट दी जावे तो फिर समय पाकर पत्ते आपों-आप सूख जायेंगे। उसीप्रकार मिथ्यात्वरूपी जड़ को काट देने पर बाकी के परिग्रह समय पाकर स्वत: छूटने लगेंगे।

जब यह बात कही जाती है तो लोग कहते हैं कि बस पर को अपना मानना नहीं है, छोड़ना तो कुछ है नहीं। यदि कुछ छोड़ना नहीं है तो फिर परिग्रह छूटेगा कैसे ?

अरे भाई! छोड़ना क्यों नहीं है? पर को अपना मानना छोड़ना है। जब पर को अपना मानना ही मिथ्यात्व नामक प्रथम परिग्रह है, तो उसे छोड़ने के लिये पर को अपना मानना ही छोड़ना होगा।

यद्यपि मानना छोड़ना (मत परिवर्तन) बहुत बड़ा त्याग है, काम है; तथापि इस जगत को इसमें कुछ छोड़ा ऐसा लगता ही नहीं है। यदि दस-पाँच लाख रुपये छोड़े, स्त्री-पुत्रादि को छोड़े, तो कुछ छोड़ा-सा लगता है। पर इन्हीं रुपयों को, स्त्री-पुत्रादि को अपना मानना छोड़े तो कुछ छोड़ा-सा नहीं लगता। यह सब मिथ्यात्व नामक प्रथम परिग्रह की ही महिमा है। उसी के कारण जगत को ऐसा लगता है।

अरे भाई! यदि पर को अपना मानना छोड़े बिना उसे छोड़ भी दे तो वह छूटेगा नहीं। पर को छोड़ने के लिये अथवा पर से छूटने के लिये सर्व प्रथम उसे अपना मानना छोड़ना होगा, तभी कालांतर में वह छूटेगा। वह छूटेगा क्या, वह तो छूटा हुआ ही है। वस्तुतः यह जीव बलात् उसे अपना मान रहा है। अतः गहराई से विचार करें तो उसे अपना मानना ही छोड़ना है।

जगत के पदार्थ तो जगत में रहते हैं और रहेंगे—उन्हें क्या छोड़ें और कैसे छोड़ें? उन्हें अपना मानना और ममत्व करना ही तो छोड़ना है।

देह को अपना मानना छोड़ने से, ममत्व छोड़ने से, उससे राग छूट जाने पर भी तत्काल देह छूट नहीं जाती; देह का परिग्रह छूट जाता है। देह तो समय पर अपने-आप छूटती है पर देह में एकत्व और रागादि-त्यागी को फिर दुबारा देह धारण नहीं करनी पड़ती और जो लोग इससे एकत्व और राग नहीं छोड़ते हैं, उन्हें बार-बार देह धारण करनी पड़ती है।

यहाँ कोई कहे कि जिसप्रकार देह को नहीं, देह को अपना मानना छोड़ना है, देह से राग छोड़ना है, देह तो समय पर अपने-आप छूट जावेगी; उसीप्रकार हम मकान तो दश-दश रखें, परन्तु उनसे ममत्व नहीं रखें, तो क्या मकान का परिग्रह नहीं होगा? यदि हाँ, तो फिर हम मकान तो खूब रखेंगे, बस उनसे ममत्व नहीं रखेंगे।

उससे कहते हैं कि भाई जरा विचार तो करो! यदि तुम मकान से ममत्व नहीं रखोगे तो मिथ्यात्व नामक अंतरंग परिग्रह छूटेगा, मकान (वास्तु) नामक बहिरंग परिग्रह नहीं। क्योंकि मकानादिरूप बाह्य परिग्रह तो प्रत्याख्यान संबंधी राग (लोभादि) रूप अंतरंग परिग्रह के छूटने

पर छूटता है एवं अप्रत्याख्यान संबंधी राग (लोभादि) रूप अंतरंग परिग्रह छूटने पर मकानादि बाह्य परिग्रह परिमित होते हैं। इसप्रकार उसे अपना मानना छोड़ने मात्र से बाह्य परिग्रह नहीं छूटता, अपितु तत्संबंधी राग छूटने से छूटता है।

देह और मकान की स्थिति में अंतर है। देह से तो राग छूट जाने पर भी देह नहीं छूटती, पर मकान से राग छूट जाने पर मकान अवश्य ही छूट जाता है। पूर्ण वीतरागी सर्वज्ञ भी तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में सदेह होते हैं, पर मकानादि बाह्य पदार्थों का संयोग छठवें-सातवें गुणस्थान में भी नहीं होता।

जैनदर्शन का अपरिग्रह सिद्धांत समझने के लिये गहराई में जाना होगा। ऊपर-ऊपर से विचार करने से काम नहीं चलेगा।

निश्चय से तो मकानादि छूटे ही हैं। अज्ञानी जीव ने उन्हें अपना मान रखा है, वे उसके हुए ही कब हैं? यह अज्ञानी जीव अपने अज्ञान के कारण स्वयं को उनका स्वामी मानता है, पर उन्होंने इसके स्वामित्व को स्वीकार ही कहाँ किया? उन्होंने इसे अपना स्वामी कब माना?

यह जीव बड़े अभिमान से कहता है कि मैंने यह मकान पच्चीस हजार में निकाल दिया। पर विचार तो करो कि इसने मकान को निकाला है या मकान ने इसे? मकान तो अभी भी अपने स्थान पर ही खड़ा है। स्थान तो इसी ने बदला है।

मकानादि परपदार्थों को अपना मानना मिथ्यात्व नामक अंतरंग परिग्रह है, और उनसे रागद्वेषादि करना—क्रोधादिरूप अंतरंग परिग्रह हैं; मकानादि बहिरंग परिग्रह हैं। परपदार्थों को मात्र अपना मानना छोड़ने से बहिरंग परिग्रह नहीं छूटता, अपितु उन्हें अपना मानने के साथ उनसे रागादि छोड़ने से छूटता है।

पर इस परिग्रही वणिक समाज ने अपरिग्रही जिनधर्म में भी रास्ते निकाल लिये हैं। जिसप्रकारसमस्त धन का मालिक एवं नियामक स्वयं होने पर भी राज्य के नियमों से बचने के लिये आज इसके द्वारा अनेक रास्ते निकाल लिये गये हैं—दूसरे व्यक्ति के नाम संपत्ति बताना, नकली संस्थायें खड़ी कर लेना आदि। उसीप्रकार धर्मक्षेत्र में भी यह सब दिखायी दे रहा है—शरीर पर तंतु भी न रखनेवाले नग्न दिगंबरों को जब अनेक संस्थाओं, मंदिरों, मठों, बसों आदि का रुचिपूर्वक सक्रिय संचालन करते देखते हैं तो शर्म से माथा झुक जाता है।

जब साक्षात् देखते हैं कि उनकी मर्जी के बिना बस एक कदम भी नहीं चल सकती तब कैसे समझ में आवे कि इससे उनका कोई संबंध नहीं है। लौट-फिर कर बात वहीं आ जाती है कि अंतरंग परिग्रह त्यागे बिना यदि बाह्य परिग्रह छोड़ा जाएगा तो यही सब कुछ होगा, क्योंकि अंतरंग परिग्रह के त्याग के बिना बहिरंग परिग्रह का भी वास्तविक त्याग नहीं हो सकता। फिर भी शास्त्रों में नववें ग्रैवेयक तक जानेवाले जिन द्रव्यलिंगी-मिथ्यादृष्टि मुनिराजों की चर्चा है, उनके तो तिल-तुषमात्र बाह्य परिग्रह और उनसे लगाव देखने में नहीं आता। अंतर्दृष्टि बिना उनके द्रव्यलिंगत्व का पता लगाना असंभव-सा ही है।

मिथ्यात्वादि अंतरंग परिग्रह के त्याग पर बल देने का आशय यह नहीं है कि बहिरंग परिग्रह के त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है या उसका कोई महत्त्व नहीं है। अंतरंग परिग्रह के त्याग के साथ-साथ बहिरंग परिग्रह का त्याग भी नियम से होता है। उसकी भी अपनी उपयोगिता है, महत्त्व भी है; पर यह जगत बाह्य में ही इतना उलझा रहता है कि उसे अंतरंग की कोई खबर ही नहीं रहती। इस कारण यहाँ अंतरंग परिग्रह की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया गया है।

जिसके भूमिकानुसार बाह्य परिग्रह का त्याग नहीं है, उसके अंतरंग परिग्रह के त्याग की बात भी कोरी कल्पना है। यदि कोई कहे कि हमने तो अंतरंग परिग्रह का त्याग कर दिया है, अब बहिरंग बना रहे तो क्या ? तो उसका यह कहना एक प्रकार से छल है, क्योंकि अंतरंग में राग के त्याग होने पर तदनुसार बाह्य परिग्रह के संयोग का त्याग भी अनिवार्य है। यह नहीं हो सकता कि अंतरंग में मिथ्यात्व; अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान एवं प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव हो जावे और बाहर में नग्न दिगम्बर दशा न हो। उक्त अंतरंग परिग्रहों के अभाव में बाह्य में सर्व परिग्रह के त्यागरूप नग्न दिगम्बर दशा होगी ही।

आकिंचन धर्म का धारी अकिंचन बनने के लिये सबसे प्रथम आकिंचन धर्म का वास्तविक स्वरूप जानना होगा, मानना होगा, समस्त परपदार्थों से भिन्न निजात्मा का अनुभव करना होगा। तत्पश्चात् अंतरंग परिग्रहरूप कषायों के अभावपूर्वक तद्नुसार बाह्य परिग्रह का भी बुद्धिपूर्वक, विकल्पपूर्वक त्याग करना होगा।

यद्यपि यहाँ आकिंचन धर्म का वर्णन मुनिभूमिका की अपेक्षा चल रहा है, अतः परिग्रह के पूर्णत्याग की बात आती है; तथापि गृहस्थों को यह सोचकर कि हम तो परिग्रह के पूर्णतः

त्यागी हो नहीं सकते—आकिंचन धर्म धारण करने से उदासीन नहीं होना चाहिये। उन्हें भी अपनी भूमिकानुसार अंतरंग-बहिरंग परिग्रह का त्याग अवश्य करना चाहिये।

जिनधर्म के अपरिग्रह सिद्धांत अर्थात् आकिंचन धर्म पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि अपरिग्रह धर्म को माननेवाले जैनियों के पास सर्वाधिक परिग्रह है, पर गहराई से विचार करने पर इसमें कोई दम नजर नहीं आता। यह कहकर मैं यह नहीं कहना चाहता कि आज के जैनी अपरिग्रही हैं। पर बात यह है कि पुण्योदय से प्राप्त होनेवाले अनुकूल संयोगों को लक्ष्य में रखकर ही यह आक्षेप लगाया जाता है, कषायचक्ररूप अंतरंग परिग्रह को लक्ष्य में रखकर नहीं; क्योंकि कषायचक्ररूप अंतरंग परिग्रहों में जो जैनेतर भी जैनियों से पीछे नहीं हैं।

बाह्य विभूति भी जैनियों के पास जितनी दुनियाँ समझती है, उतनी नहीं है। दिखावा अधिक होने से दुनियाँ को ऐसा लगता है। यदि है भी तो सदाचाररूप जीवन के कारण है। सप्तव्यसनादि का अभाव होने से सहज संपन्नता दिखायी देती है। जिस दिन जैनसमाज से सदाचार उठ जायेगा, उस दिन उसकी भी वही दशा होगी जो व्यसनी समाज की होती है।

एक बात यह भी विचारणीय है कि धर्म की दृष्टि से गृहस्थावस्था में सच्चे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जैनी भी चक्रवर्ती हो सकते हैं, हुए भी हैं। भरत चक्रवर्ती आदि के जैनत्व में शंका नहीं की जा सकती है। चक्रवर्ती से अधिक परिग्रह तो आज के जैनियों के पास हो नहीं गया है। यह कहकर मैं जैनियों को बाह्य परिग्रह जोड़ना चाहिये, इस बात की पुष्टि नहीं करना चाहता; बल्कि यह कहना चाहता हूँ कि जैनधर्म के अनुसार वे अपरिग्रह के सिद्धांत का कहाँ तक उल्लंघन कर रहे हैं, यह बात भी विचारणीय है।

जिनधर्म में अपरिग्रह सिद्धांत को प्रायोगिकरूप देने के लिये कुछ स्तर निश्चित है। किस स्तर का जैन कितना परिग्रह का त्याग करता है—इसका विस्तृत वर्णन मुनि और श्रावक के आचार के वर्णन करनेवाले चरणानुयोग के ग्रंथों में विस्तार से किया गया है। तदनुसार मुनिराज के जब रंचमात्र भी बाह्य परिग्रह नहीं होता तब अणुव्रती गृहस्थ अपने बाह्य परिग्रह को अपनी शक्ति और आवश्यकतानुसार सीमित कर लेता है। यद्यपि अव्रती गृहस्थ भी अन्याय से धनोपार्जन नहीं करता; तथापि उसके परिग्रह की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी है, उनमें चक्रवर्ती भी होते हैं।

इसप्रकार जैनियों में अनेक भेद पड़ते हैं। यदि जैनमुनि एक सूत के बराबर भी परिग्रह

रखे तो वह मुनि नहीं और यदि अव्रती श्रावक छह खंड की विभूति का भी मालिक हो तो उसके कारण उसके जैनत्व में कोई कमी नहीं आती, क्योंकि वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है।

यद्यपि बाह्यविभूति और उसे रखने का भाव जैनत्व में बाधक नहीं, तथापि रंचमात्र भी परिग्रह रखनेवाले को मुक्ति प्राप्त नहीं होती। अतः मुक्ति के अभिलाषी को तो समस्त परिग्रह का त्याग करना ही चाहिये।

अपरिग्रह की तुलना समाजवाद से भी की जाती है। कुछ लोग तो दोनों को एक ही कहने लगे हैं। पर दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ समाजवाद का संबंध मात्र बाह्य वस्तुओं से है, उनके समान वितरण से है; वहाँ अपरिग्रह में कषायों का त्याग मुख्य है। यदि बाह्य परिग्रह से भी समाजवाद की तुलना करें तो भी दोनों के दृष्टिकोण में अंतर स्पष्ट दिखायी देता है।

समाजवाद के दृष्टिकोण के अनुसार यदि भोगसामग्री की कमी नहीं है और वह सबको इच्छानुसार प्राप्त है तो फिर उसके त्याग का या सीमित उपयोग का कोई प्रयोजन नहीं है, पर अपरिग्रह के दृष्टिकोण से यह बात नहीं है; भले ही सभी को असीमित भोग प्राप्त हों, फिर भी हमें अपनी इच्छाओं को सीमित करना ही चाहिये।

अनाज की कमी से सप्ताह में एक दिन भोजन नहीं करना अलग बात है और किसी भी प्रकार की कमी न होने पर भी भोजन का त्याग दूसरी बात है।

समाजवादी दृष्टिकोण पूर्णतः आर्थिक है, जबकि अपरिग्रह की दृष्टि पूर्णतः आध्यात्मिक है। यदि सबके पास कार हो और तुम भी रखो तो समाजवाद को कोई एतराज नहीं होगा; पर अपरिग्रह कहता है तुम्हें औरों से क्या, तुम तो अपनी इच्छाओं को त्यागो अथवा सीमित करो।

समाजवादी दृष्टिकोण में परिग्रह को सीमित करने की बात तो कुछ बैठ भी सकती है, पर परिग्रहत्याग की बात कैसे बैठेगी ? क्या कोई समाजवादी यह भी चाहता है कि संपूर्ण परिग्रह त्याग दिया जाये और सभी नग्न दिगम्बर हो जायें ? नहीं, कदापि नहीं। पर अपरिग्रह तो पूर्णतः त्याग का ही नाम है, सीमित परिग्रह रखने को परिग्रहपरिमाण कहा जाता है, अपरिग्रह नहीं।

यहाँ जिस आकिंचनधर्मरूप अपरिग्रह की बात चल रही है, वह तो नग्न दिगम्बर मुनिराजों के ही होता है। यदि सबके पास मोटर-कार हो जायेगी तो क्या नग्न दिगम्बर मुनिराज को मोटर-कार में बैठने में आपत्ति नहीं होगी? यदि समाजवाद ही अपरिग्रह है तो फिर मुनिराज को भी कार रखने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। अथवा रेल, मोटर, बस आदि जो सवारी जनसाधारण को आज भी उपलब्ध है उनमें भी अपरिग्रही मुनिराज क्यों नहीं बैठते? इससे स्पष्ट है कि समाजवाद से अपरिग्रह का दृष्टिकोण एकदम भिन्न है।

अपरिग्रह का उत्कृष्ट रूप नग्न दिगम्बर दशा है जो कि समाजवाद का आदर्श कभी नहीं हो सकता। समाजवाद की समस्या भोग-सामग्री के समान वितरण की है और अपरिग्रह का अंतिम उद्देश्य भोग-सामग्री और भोग के भाव का भी पूर्णतः त्याग है।

यहाँ समाजवाद के विरोध या समर्थन की बात नहीं कही जा रही है, अपितु अपरिग्रह और समाजवाद के दृष्टिकोण में मूलभूत अंतर क्या है—यह स्पष्ट किया जा रहा है।

समाजवाद में क्रोधादिरूप अंतरंग परिग्रह और धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह के पूर्णतः त्याग के लिये भी कोई स्थान नहीं है, जबकि अपरिग्रह में उक्त दोनों बातें ही मुख्य हैं। अतः यह निश्चिंत होकर कहा जा सकता है कि समाजवाद को ही अपरिग्रह कहनेवाले समाजवाद का सही रूप समझते हों, चाहे नहीं; पर अपरिग्रह का स्वरूप उनकी दृष्टि में निश्चितरूप से नहीं है।

यद्यपि परिग्रह सबसे बड़ा पाप है, जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है; तथापि जगत में जिसके पास अधिक बाह्य परिग्रह देखने में आता है, उसे पुण्यात्मा कहा जाता है। शास्त्रों में भी कहीं-कहीं उसे पुण्यात्मा कह दिया गया है। भाग्यशाली तो उसे सारी दुनियाँ कहती ही है।

हिंसक को कोई पुण्यात्मा नहीं कहता, असत्यवादी और चोर भी पापी ही कहे जाते हैं। इसीप्रकार व्यभिचारी भी जगत की दृष्टि में पापी ही गिना जाता है। जब उक्त चारों पापों के कर्ता पापी माने जाते हैं, तब न जाने परिग्रही को पुण्यात्मा, भाग्यशाली क्यों कहा जाता है? कुछ लोग तो उन्हें धर्मात्मा तक कह देते हैं। धर्मात्मा ही क्यों, न जाने क्या-क्या कह देते हैं? तभी तो भर्तृहरि को लिखना पड़ा:—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति॥४१॥[१]

जिसके पास धन है—वही कुलीन है (अच्छे कुल में उत्पन्न) है, वही विद्वान है, वही शास्त्रज्ञ है, वही गुणों का जाननहार है, वही वक्ता है, और वही दर्शनीय भी है; क्योंकि सब गुण सुवर्ण (धन) में ही आश्रय प्राप्त करते हैं।

तो क्या परिग्रही को पुण्यात्मा अकारण कहा जाता है? ऊपर से तो ऐसा ही लगता है, पर गहराई से विचार करने पर प्रतीत होता है कि इसका भी कारण है और वह यह है कि हिंसादिपाप—कारण, स्वरूप एवं फल—तीनों ही रूप में पापस्वरूप ही है; क्योंकि उनके कारण भी पापभाव हैं, वे पापभावस्वरूप तो हैं ही तथा उनका फल भी पाप का बंध ही है। किंतु परिग्रह में विशेषकर बाह्य परिग्रह के दृष्टिकोण से देखने पर इनमें अंतर आ जाता है। बाह्य-विभूतिरूप परिग्रह का कारण पुण्योदय है, पर है वह पापस्वरूप ही; फिर भी यदि उसे भोग में लिया जाये तो पापबंध का कारण बनता है, किंतु यदि शुभभावपूर्वक शुभकार्य में लगा दिया जाये तो पुण्यबंध का कारण बन जाता है। कहा भी है—

बहुधन बुराहू, भला कहिए लीन पर-उपगार सों॥[२]

इसप्रकार बाह्यपरिग्रह का—कारण पुण्य, स्वरूप पाप, और फल अशुभ में लगने पर पाप व शुभ में लगने पर पुण्य हुआ।

यहाँ कोई कहे कि यदि यह बात है तो परिग्रह को पाप कहा ही क्यों है?

वह भले ही पुण्योदय से प्राप्त होता है, पर है तो पाप ही। वह ऐसा वृक्ष है जिसमें बीज पड़ा था पुण्य का, वृक्ष उगा पाप का और फल लगे ऐसे कि खावे तो मरे अर्थात् पाप बाँधे और त्यागे तो जीवे अर्थात् पुण्य बाँधे। यह विविधता इसके स्वभाव में ही पड़ी है। यही कारण है कि सबसे बड़ा पाप होने पर भी जगत में परिग्रही को पुण्यात्मा कह दिया जाता है।

वस्तुतः बात तो ऐसी है कि पाप के उदय से कोई पापी और पुण्य के उदय से कोई पुण्यात्मा नहीं होता, परंतु पापभाव करे सो पापी, पुण्यभाव करे सो पुण्यात्मा और धर्मभाव

१. नीतिशतक, छंद-४१
२. दशलक्षण पूजन, आकिंचनधर्म का छंद

करे सो धर्मात्मा होता है। अन्यथा पूर्ण धर्मात्मा भावलिंगी मुनिराजों को भी पापी मानना होगा क्योंकि उनके भी पाप का उदय आ जाता है, उससे उन्हें अनेक उपसर्ग एवं कुष्टादि व्याधियाँ हो जाती हैं; पर वे पापी नहीं हो जाते, धर्मभाव के धनी होने से धर्मात्मा ही रहते हैं। इसीप्रकार किसी वेश्या या डाकू के पास बहुत धनादि हो जाने से वे पुण्यात्मा नहीं हो जाते, पापी ही रहते हैं।

जगत कुछ भी कहे पर सब पापों की जड़ होने से परिग्रह सबसे बड़ा पाप है और सर्व कषायों और मिथ्यात्व के अभावरूप होने से आकिंचन सबसे बड़ा धर्म है।

इस उत्तम आकिंचनधर्म को धारण कर सभी पूर्ण सुख को प्राप्त करें, इस पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ।

समयसार प्रवचन

आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्य कृत 'आत्मख्याति' टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा १४-१५ की टीका में समागत कलश नं १३ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्धवा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंपमेकोऽस्ति नित्यमवबोधधनः समन्तात् ॥१३॥

इसप्रकार जो पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आतमा की अनुभूति है, वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है, यह जानकर तथा आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके 'सदा सर्व ओर एकज्ञानघन आत्मा है' इसप्रकार देखना चाहिये।

चौदहवीं गाथा में सम्यग्दर्शन की प्रधानता से कहा था। अब पन्द्रहवीं गाथा में ज्ञान की प्रधानता से कहेंगे कि शुद्धनय के विषयस्वरूप आत्मा की अनुभूति ही सम्यग्ज्ञान है।

स्वाश्रय से यथार्थ श्रद्धा होने के बाद ज्ञानी निरंतर अपने ज्ञान को ही जानता है। ज्ञानी जहाँ-जहाँ देखता है, वहाँ-वहाँ निरंतर ज्ञान की ही अनुभूति है। पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक तथा पंचेन्द्रियों के विषयों के विचार-काल में भी 'मैं अखंड ज्ञायकरूप हूँ, पररूप नहीं हूँ'—ऐसे ज्ञानमय अनुभव से वह अपने ज्ञान की स्वच्छता का ही अनुभव करता है।

स्वाश्रित शुद्धनय द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव होने के बाद मैं जहाँ भी देखता हूँ, वहाँ मेरे ज्ञानवैभव की अवस्था ही दिखती है। मुझ में परज्ञेयों की नास्ति है, इसलिये बाह्य में निंदा अथवा प्रशंसा के शब्दादि जो भी पंचेन्द्रिय के विषय ज्ञात होते हैं, वह सब मेरे ज्ञान स्वभाव की स्वच्छता ही दिखायी देती है। यदि मैं उन शब्दादि को न जानना चाहूँ अर्थात् उनके अस्तित्व का विरोध करूँ तो मेरे ज्ञान का ही निषेध होता है। पर में अच्छा-बुरा मान कर उसमें अटक जाने से मेरे ज्ञानस्वभाव का अनादर होता है। पर में इष्टानिष्ट की कल्पना मेरे ज्ञान का स्वभाव नहीं है।

जैसे दर्पण की स्वच्छता में काँटा या फूल, मिट्टी या सोना, बर्फ या अग्नि जो भी झलकता है; वह सब दर्पण की अवस्था है। इन पदार्थों के ज्ञान का निषेध करने का अर्थ दर्पण की स्वच्छता अर्थात् दर्पण का ही निषेध करना है। इसीप्रकार अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, पंचेन्द्रिय के विषयादि ज्ञान की स्वच्छता में सहज ही ज्ञात होते हैं। इनके ज्ञात होने का निषेध करने पर अपने ज्ञानगुण की स्वच्छता का अर्थात् अपना ही निषेध हो जाता है। ऐसा जानने के कारण ज्ञानी स्वाधीन स्वलक्ष्य के द्वारा निरंतर निर्मलज्ञान का ही अनुभव करता है, स्वानुभव की शांति को ही जानता है। पर को नहीं जानता, पर का अनुभव भी नहीं करता।

यदि कहीं दुर्गंधित वस्तु दिखती है तो वहाँ ज्ञान अपने में रहकर उसे जानने का ही काम करता है। 'यह दुर्गंध ठीक नहीं है, इसलिये नहीं चाहिये'—इसका अर्थ यह हुआ कि मेरे ज्ञान की अवस्था नहीं चाहिये। ज्ञान की स्व-परप्रकाशक शक्ति है। वह अपने को जानता है और प्रस्तुत वस्तु को अपनी योग्यतानुसार ज्यों की त्यों जानता है। जाननेयोग्य परवस्तु का अर्थात् ज्ञेय का निषेध करने पर अपने ज्ञानगुण का ही निषेध होता है। स्वाश्रित ज्ञान द्वारा परावलंबी आसक्ति को मिटाकर अपने ज्ञान-भाव में देखने के अभ्यास से निरंतर ज्ञान और शांति का

अनुभव होता है। ज्ञान स्ववस्तु को जाने या परवस्तु संबंधी अपनी पर्याय को जाने, उसमें स्व को जाननेवाला और पर को जाननेवाला ज्ञान अलग-अलग नहीं है। इसलिये जानने में पराश्रय का भेद नहीं होता अर्थात् ज्ञेय को जाननेवाले और ज्ञायक को जाननेवाले ज्ञान में भेद नहीं होता।

प्रश्न—ज्ञान का विकास कैसे होता है ?

उत्तर—जिस ओर रुचि होती है, उसी ओर ज्ञान विकसित होता है। जिसे जिस व्यवसाय की रुचि है, उस ओर उसके ज्ञान का विकास सहज होता है। इसीप्रकार नित्य ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा की दृढ़ रुचि होने पर स्वभाव की ओर ज्ञान विकसित होता है।

ज्ञानी स्व-पर को जानने पर अपने ज्ञान में अच्छे-बुरे का भेद नहीं करते; और अज्ञानी परवस्तु को देखकर उसमें आसक्त होकर रागी-द्वेष होते हैं, पर में इष्ट-अनिष्ट मानकर, पर का आदर-अनादर करके ज्ञान में राग-द्वेष के विषय बनाते हैं। ज्ञानी पर से भिन्न ज्ञाता ही रहते हैं। आत्मा में ज्ञातृत्व का नित्य अस्तित्व है और पर का नास्तित्व है। ज्ञानी स्वभाव को नित्य ज्ञातास्वरूप से एकरूप अनुभव करते हैं, राग-द्वेष के भेदरूप से अनुभव नहीं करते।

अज्ञानी जीव अंतरंग के मार्ग को बाहर ढूँढ़ता है। वह पराधीनता की श्रद्धा द्वारा पर में आसक्त है। ज्ञानी को सदा ज्ञान-स्वभाव का अखंड आश्रय होने से वे पर में नहीं रुकते। चाहे जैसा अनुकूल-प्रतिकूल संयोग हो तथापि उसमें अटके बिना वे अपने एकरूप ज्ञानस्वभाव को जानते हैं।

पाँच सौ मुनियों को घानी में पेल डाला, फिर भी उनके आत्मा की अखंड ज्ञान-शांति भंग नहीं हुई। अंतरंग में विद्यमान अनंत शक्ति में एकाग्र होकर अनंत जीव मोक्ष गये हैं और जायेंगे। अज्ञानी कहते हैं कि जब वे मुनि धर्मात्मा थे तो उनमें से किसी ने चमत्कार क्यों नहीं बताया ? कोई देव उनकी सहायता करने क्यों नहीं आया ? किंतु ऐसा कहनेवालों को वस्तु-स्वरूप का ज्ञान नहीं है। ज्ञानानंदस्वरूपी साक्षात् चैतन्यघन देवाधिदेव प्रगट हो गया, यही सबसे बड़ा चमत्कार है।

सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान और आंशिक सम्यक्चारित्ररूप स्वरूपाचरण आ जाता है। अपूर्व पात्रता और सत्समागम द्वारा अभेदस्वभाव को जानकर पर्यायभेद का लक्ष्य गौण कर अक्रिय असंग ज्ञानस्वभाव का लक्ष्य करके रागमिश्रित विचारों का भी अभाव कर त्रिकाल एकरूप पूर्णस्वभाव की प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है, उसमें पराश्रय नहीं है। 'मैं निर्विकल्प अखंडानंद ज्ञायकस्वरूप हूँ'—ऐसी यथार्थ श्रद्धा करने पर मुक्ति की ओर प्रयाण प्रारंभ होता है। ●

स्वभावपर्याय और विभावपर्याय

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की १५वीं गाथा तथा उसमें समागत कलश पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा॥१५॥

मनुष्य, नारक, तिर्यंच और देवरूप पर्यायें, विभाव पर्यायें कही गयी हैं, कर्म की उपाधि से रहित पर्यायें स्वभाव पर्यायें कही गयी हैं।

देखो, इस गाथा में सूक्ष्म तथा अलौकिक बात आयेगी। ध्यान रखना। यहाँ पर्याय की बात है। उसमें कारणशुद्धपर्याय की बात भी लेंगे। आत्मा की पर्यायों में, स्वभावपर्याय और विभावपर्याय, ऐसे दो भेद हैं।

कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय यह गुण की बात नहीं है, किंतु पर्याय की बात है। आत्मा में कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल है और कार्यशुद्धपर्याय नवीन प्रकट होती है।

कारणशुद्धपर्याय किसे कहें? द्रव्य में निरपेक्ष कारणरूपशुद्धदशा त्रिकाल है। महामुनि पद्मप्रभमलधारिदेव एक अलौकिक रहस्य उद्घाटित करते हैं कि जिसप्रकार धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह चारों द्रव्य त्रिकाल शुद्ध हैं और पर्याय में भी एक धारापने अखंड एकरूप वर्तते हैं, उनकी पर्याय में विषमता नहीं है; उसीप्रकार आत्मा में भी वैसी एकरूप पर्याय बतलानी है। संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष ऐसी पर्यायों में तो अनेकरूपता-विषमता आती है, आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, उस स्वभाव के साथ त्रिकाल ध्रुवरूप रहनेवाली, अव्यक्तरूप से वर्तमान वर्तती, व्यक्तरूप उत्पाद-व्यय से रहित—ऐसी अखंड कारणशुद्धपर्याय है, वह अनादि-अनंत है।

धर्मास्ति आदि में जो पर्याय है, उसमें तो उत्पाद-व्यय है, परंतु वह एकरूप परम पारिणामिक धारा से है; पुद्गल में खंड-खंड और भंग-भंगरूप पर्याय है, उसमें तो एक छूटा

परमाणु हो उसमें भी विषम पर्यायें होती हैं—ऐसा उसका स्वभाव है। परंतु जीव में भी धर्मास्ति आदि की तरह एक त्रिकाल परमपारिणामिकभावरूप पर्याय है, वह यहाँ बतलानी है।

आत्मा का जो त्रिकाल स्वभाव है तदनुसार ही उसकी परिणति त्रिकाल एकरूप है। चैतन्य आत्मा की संसार, मोक्षमार्ग और मोक्षपर्याय तो विषम है—एकधारारूप नहीं है। परंतु उस प्रत्येक पर्याय के समय—निगोद के अथवा सिद्धपर्याय के समय—अव्यक्तरूप पारिणामिक धारा से अनादि-अनंत एक परिणति है, वह शुद्ध निश्चयनय के विषय में आती है। संसार, मोक्ष तो व्यवहारनय के विषय हैं तथा त्रिकाल ध्रुवस्वभाव और उसके साथ वर्तती एकरूप ध्रुवपरिणति वह निश्चयनय का विषय है। उसका यह वर्णन चल रहा है। अनादि-अनंत स्वभावचतुष्टय के साथ वर्तती सहज परिणति वह कारणशुद्धपर्याय है—ऐसा कहते हैं।

उसमें प्रथम स्वभावचतुष्टय कैसा है, वह कहते हैं। अनादि-अनंत, अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववाला और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहज परम वीतराग सुखात्मक शुद्ध-अन्तःतत्वरूप स्वभाव अनंत चतुष्टय है, और वह त्रिकाल है। संसार, मोक्षमार्ग तथा मोक्षपर्याय को गौण करके जो त्रिकाल एकरूप सहजज्ञान-दर्शन-चारित्र और आनंदरूप स्वभावअनंतचतुष्टय है—वह आत्मा का स्वरूप है। उस त्रिकाली स्वभावचतुष्टय के साथ रहनेवाली जो पूजित पंचमभाव परिणति है, वह कारणशुद्धपर्याय है।

आत्मा वह द्रव्य, स्वभाव अनुंतचतुष्टय कहे वे गुण, और उनके साथ रहनेवाली परमपारिणामिकभाव से वर्तती परिणति वह कारणशुद्धपर्याय है। यह कारणशुद्धपर्याय सहज शुद्धनिश्चयनय का विषय है। सभी आत्माओं में यह कारणशुद्धपर्याय एकधारारूप से अनादि अनंत वर्त रही है—उसमें कोई भेद नहीं है।

उत्पाद-व्ययरूप पर्याय में जो राग-द्वेष, मोक्षमार्ग अथवा मोक्ष होता है, वह तो विषमरूप है, एकधारारूप नहीं है; उसमें तो कर्म की उपाधि है। और यह सहज शुद्धकारणपर्याय तो कर्म की उपाधि से विवर्जित है।

मूलसूत्र में '**कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया**' ऐसा कहा है—उसमें से टीकाकार मुनिराज ने यह कारणशुद्धपर्याय निकाली है। कार्यशुद्धपर्याय में तो कर्म के अभाव की अपेक्षा भी आती है, परंतु इस कारणशुद्धपर्याय में तो, जो द्रव्य के साथ ही एकरूप अभेद है, कर्म के अभाव की अपेक्षा भी नहीं आती—वह तो त्रिकाल निरपेक्ष है।

जैसा सामान्यशक्तिरूप त्रिकालस्वभाव है, वैसा ही उसका परिणतिरूप स्वभाव भी वर्तमान एकधारारूप शुद्ध वर्तता है। उसमें एकाग्रता करने पर मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रकट होता है। वह तो कार्य है।

सहजज्ञानादि स्वभाव अनंत चतुष्टययुक्त कारणशुद्धपर्याय में से केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टययुक्त कार्यशुद्धपर्याय प्रकट होती है। पूज्यनीय परमपारिणामिक भावपरिणति वह कारणशुद्धपर्याय है और शुद्धक्षायिक भावपरिणति वह कार्यशुद्धपर्याय है।

इस कारणशुद्धपर्याय में उत्पाद-व्यय नहीं है। वह वर्तमानरूप है, परंतु उसका अनुभव नहीं है। यदि उसका अनुभव हो, तब तो संसार-मोक्ष, देव-गुरु-शास्त्र अथवा नवतत्त्व आदि कुछ रहते ही नहीं। यदि यह एक धारारूप कारणशुद्धपर्याय आत्मा के साथ त्रिकाल न हो तो स्वभाव की त्रिकालशक्ति और उसका एकरूप पूरा वर्तमान, इन दोनों के अभेदरूप एक परमपारिणामिकभाव सिद्ध नहीं होता। और यदि इस पर्याय का अनुभव होता हो तब तो बंध-मोक्ष इत्यादि व्यवहार ही न रहे। इसके आश्रय से मोक्ष प्रकट होता है, वह मोक्ष कार्य है, और यह पर्याय तो त्रिकाल कारणरूप से वर्त रही है। यह परमपारिणामिकभाव की पर्याय पूजित है, आश्रय करने जैसी है।

अहो! यहाँ मुनिराज ने वस्तुस्वभाव के गूढ़ रहस्य को उद्घाटित किया है। ऐसी स्पष्ट बात आज सुनायी नहीं पड़ती।

वस्तु के साथ यह कारणशुद्धपर्याय अनादि-अनंत एकरूप धारावाही वर्तती है, वह गुण नहीं है, सामान्य द्रव्य भी नहीं है; किंतु सामान्य के साथ वर्तता हुआ एकरूपध्रुव विशेष है, वह कारणशुद्धपर्याय है, उसका व्यक्त अनुभव किसी को नहीं होता। यदि उसका व्यक्त अनुभव हो जाये तो वह कारण नहीं रहता। उसमें उत्पाद-व्यय न होने पर भी वह परिणति है, पर्याय है, द्रव्य के साथ अखंड पारिणामिकभाव से वर्तमान वर्तती है। अहो! एक धारारूप परमपारिणामिकभाव की परिणति से शोभित चैतन्य भगवान विराज रहा है। द्रव्य और गुण से तो परिपूर्ण है ही, परंतु पर्याय में भी परिपूर्ण भगवान अनादि-अनंत एकधारारूप, जब देखो तब, वर्तमानपने विराज रहा है।

यह कारणशुद्धपर्याय एकरूप सत् है। उत्पाद-व्यय भी सत् तो है। परंतु वह तो तीनों

काल एकरूप भावरूप सत् है, इसमें 'अभावपना' कभी आता नहीं। इसमें उत्पाद-व्यय नहीं है। समय-समय उत्पाद-व्यय होता है, वह सत् है किंतु उसमें उत्पाद और व्यय—ऐसी विविधता है, परंतु इस कारणशुद्धपर्याय में वैसी विविधता नहीं है। उत्पाद-व्यय सत् है, उसकी वाचक वाणी भी सत् है और उसका ज्ञान भी सत् है। उसी भाँति यह कारणशुद्धपर्याय सहज शुद्धनिश्चय से सभी जीवों में सत् है। उसको कहनेवाली यह वाणी सत् है और उसका ज्ञान भी सत् है।

स्वभावचतुष्टय में जो 'सहज परम वीतराग सुख' कहा उसमें 'वीतराग' शब्द से ऐसा मत समझना कि 'पहले राग था और बाद में टल गया' परंतु तीनों काल वह तो सहज रागरहित ही है। अहो! चैतन्य भगवान अपने स्वभाव अनन्तचतुष्टय की सहज परिणति के साथ ही त्रिकाल विराजमान है—एक समय भी उस परिणति का उसे विरह नहीं है। ऐसी अपनी स्वरूपपरिणतिसहित वह पूजनीक है।

जैसा त्रिकाल स्वभाव वैसा ही उसका वर्तमान, जैसा त्रिकाल सामान्य वैसा ही उसका वर्तमान विशेष—इसप्रकार अभेद परमपारिणामिकस्वभाव त्रिकाल वर्त रहा है। मात्र स्वभाव की ही अपेक्षावाली एकरूप धारावाही पर्याय है, जैसा ध्रुव सामान्यशक्तिरूप स्वभाव है, वैसी ही उसकी सहज परिणति उसके साथ विराज रही है, वह महापूजित है। त्रिलोकनाथ अरहंत और सिद्ध भगवान की अपेक्षा भी यह परमपारिणामिकभाव की परिणति महापूजित है, क्योंकि वही केवलज्ञान और मोक्ष का कारण है।

चैतन्य की वर्तमान कारणशुद्धपर्याय पूजित है, आदरणीय है, उसमें एकाग्रता करना योग्य है; क्योंकि उसी से मोक्षमार्ग और मोक्ष प्राप्ति होती है; अतः मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय की अपेक्षा भी यह परमपारिणामिकभावरूप कारणशुद्धपर्याय विशेष पूज्य है।

जिसप्रकार समुद्र, समुद्र के पानी का दल, और उसकी एकरूप पानी की सपाटी, वह त्रिकाल एकरूप है और उसमें लहरें उछलती हैं; उसीप्रकार आत्मा में त्रिकाल एकरूप द्रव्य, उसके गुण, और उसकी एकरूप ध्रुव पारिणामिकभाव से वर्तती पर्याय है। उसमें उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव तो उत्पाद-व्यय वाली पर्यायें हैं, किंतु यह कारणशुद्धपर्याय तो एकरूप धारावाहिकरूप से वर्त रही है।

देखो! यह वेदांत जैसा नहीं है; सामान्य जिसप्रकार कूटस्थ है उसीप्रकार उसकी ध्रुवपरिणति भी कूटस्थ है, परंतु उसको जानता है कौन? जाननेवाली तो उत्पाद-व्ययवाली मोक्षमार्ग की पर्याय है। यह कारणशुद्धपर्याय है, वह पर्यायदृष्टि का विषय नहीं है, वह तो शुद्धद्रव्यदृष्टि का विषय है—शुद्धनिश्चयनय का विषय है। सामान्य और विशेष से परिपूर्ण यदि स्वभाव न हो तो चैतन्य की पूर्णता सिद्ध नहीं होती, दृष्टि का विषय पूरा नहीं होता और चैतन्य की महिमा भी पूर्ण नहीं होती।

धर्मास्ति आदि चार द्रव्य तो अमूर्त और जड़ हैं तथापि उनमें त्रिकाल एकरूपभाव से पर्याय वर्तती है, उसका जाननेवाला तो सर्वोत्तम महिमावाला भगवान आत्मा है, उसमें भी त्रिकाल एकरूप धारावाहिक कारणशुद्धपरिणति वर्त रही है, हीनाधिकपनारूप विषमता उसमें नहीं है। उसमें एकाग्रता करने से मोक्षमार्ग तथा मोक्ष होता है।

धर्मास्ति आदि में तो मात्र प्रमेयत्व ही है, वे स्वयं अपने को जानते नहीं हैं, उनको प्रकट करनेवाला तो आत्मा का ज्ञान है—अर्थात् आत्मा ही महिमावान है, उस आत्मा में त्रिकाल एकरूप स्वभावचतुष्टय के साथ जो सहज पंचमभावरूप परिणति वर्त रही है, उसका नाम कारणशुद्धपर्याय है। '**परिणामे भवः पारिणामिकः**' द्रव्य के एकरूप परिणामपने वर्तने वाली पारिणामिकभाव की परिणति है। वह परिणति व्यवहारनय का विषय नहीं है। यह शुद्धनिश्चयनय का विषय है, यह त्रिकाल है, कारणरूप है, गुण नहीं—पर्याय है, प्रकट वेदनरूप नहीं किंतु शक्तिरूप है। कार्यस्वभावपर्याय का वर्णन तो आगे आयेगा। यह तो चैतन्य भगवान के साथ विराजित उसकी परिणति समय-समय है—उसकी बात है।

अहो! समय-समय में तुझमें परिपूर्णता वर्त रही है। पूर्ण कारण जब देखो तब तुझमें ही हाजिर है। बाहर में कारण की खोज में जाना पड़े—ऐसा नहीं है। संसारदशा में भी यह कारणपर्याय त्रिकाल वर्त रही है।

पंडित बनारसीदासजी ने परमार्थवचनिका में आगमपद्धति और अध्यात्मपद्धति का विवेचन किया है, उसमें यह बात स्पष्ट की है। वहाँ संसार अवस्था में त्रिकालवर्ती चार बोल बतलाये हैं।

आगमरूप कर्मपद्धति है, उसके दो प्रकार हैं। द्रव्यरूप और भावरूप।

(१) द्रव्यरूप आगमपद्धति अर्थात् पुद्गलकर्म की पर्याय।

(२) भावरूप आगमपद्धति अर्थात् जीव का विकारीभाव।

अध्यात्मपद्धति अर्थात् शुद्धचेतनापद्धति। उसमें भी दो बोल; द्रव्यरूप और भावरूप।

(३) द्रव्यरूप तो जीवत्व परिणाम है—वह जीवत्वरूप शुद्धचेतनापरिणाम त्रिकाल है।

(४) भावरूप ज्ञानदर्शनादि अनंतगुण परिणाम है। वे ज्ञानदर्शनादि भावरूप शुद्धचेतना-परिणाम हैं। वे भी त्रिकाल वर्तते हैं। उनको जानने और मानने में मोक्षमार्ग आ जाता है।

उपर्युक्त चारों पर्यायें संसार में त्रिकाल वर्तती हैं। प्रथम के दो बोल संसार में हैं, परंतु मोक्ष में नहीं। ऊपर जो द्रव्यरूप और भावरूप शुद्धचेतनापद्धति कही है, उसका समावेश इसमें हो जाता है। द्रव्य की समय-समय की अखंड परिणति त्रिकाल वर्तती है। भगवान चैतन्य अपनी कारणशुद्धपरिणति में त्रिकाल विराज रहा है, ऐसा परिपूर्ण भगवान है। उसकी परिणति में कभी अधूरापन नहीं है। ऐसी पूर्णता को माने तो पूर्ण बन जाये। अधूरा मानेगा वह अधूरा रहेगा। सिद्धपर्याय प्रकट हो जाये तब भी शुद्धकारणपरिणति तो ज्यों की त्यों पूर्ण ही रहती है—ऐसी कारणशुद्धपर्याय है।

चैतन्य भगवान के साथ उसकी—तैयार सुसज्जित हथियार जैसी—कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल पूर्ण पड़ी है, उसके सामने देखने पर संसार का नाश होकर मोक्षपर्याय प्रकट होती है।

ऐसा पूर्ण वस्तुस्वरूप है। ऐसी वस्तु के गाने गाये जाने योग्य हैं। एकरूप धारावाही सपाटीपने चैतन्यसमुद्र विराज रहा है, यही निश्चय से पूज्य है। इसी के आधार से केवलज्ञान प्रकट होता है—वह फलरूप कार्यपर्याय है। यह कारणशुद्धपर्याय फलरूप नहीं है, इसके आश्रय से जो कार्यशुद्धपर्याय प्रकट होती है, वह फलरूप है। उसका वर्णन अब करते हैं।

सादि, अनंत, अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्धसद्भूतव्यवहार से केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलशक्तियुक्त फलरूप अनंत चतुष्टय के साथवाली अर्थात् अनंत चतुष्टय के साथ तन्मयपने रहनेवाली जो परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्ध परिणति है, वही कार्यशुद्धपर्याय है।

(१) कारणशुद्धपर्याय अनादि-अनंत है, परंतु यह कार्यशुद्धपर्याय सादि-अनंत है।

(२) कारणशुद्धपर्याय अमूर्त है, उसीप्रकार यह कार्यशुद्धपर्याय भी अमूर्त है।

(३) कारणशुद्धपर्याय अतीन्द्रिय है, उसीप्रकार यह कार्यशुद्धपर्याय भी अतीन्द्रिय है।

(४) कारणशुद्धपर्याय को त्रिकालकार्य की उपाधि नहीं; और इस कार्यशुद्धपर्याय को प्रकट होने के बाद कर्म की उपाधि नहीं।

(५) कारणशुद्धपर्याय सहज शुद्धनिश्चय का विषय है और यह कार्यशुद्धपर्याय शुद्धसद्भूतव्यवहार का विषय है।

(६) कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल सहजज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुख ऐसे स्वभावचतुष्टय के साथ वर्तती है और यह कार्यशुद्धपर्याय केवलज्ञान-दर्शन, सुख और वीर्य ऐसे चतुष्टय के साथ अभेद वर्तती क्षायिकभावरूप उत्कृष्ट परिणति है (यहाँ कार्यचतुष्टय में वीर्य को लिया है और कारणचतुष्टय में आनंद को लिया है।)

अहो! जंगल में बैठे-बैठे मुनियों ने सिद्धसदृश अपने आत्मा के साथ आनंद भोगते-भोगते उसे बाहर प्रकट किया है। त्रिकाल शुद्धस्वभावरूप चैतन्यभगवान राजा और उसकी कारणशुद्धपरिणतिरूप रानी—यह दोनों त्रिकाल साथ-साथ विराजमान हैं। प्रवचनसार के चरणानुयोग में शुद्धपरिणतिरूपी स्त्री कही है, वह तो प्रकट हुई निर्मल पर्याय को कहा है। परंतु यह कारणशुद्धपरिणतिरूपी स्त्री तो त्रिकाल ही चैतन्य के साथ ही साथ है। इसी में से केवलज्ञानादि कार्य प्रकट होते हैं।

जो स्वभाव अनंतचतुष्टय प्रकट हुआ उसके साथ सभी गुणों की परिणतियों को क्षायिकभाव में अभेदपने लेकर उनको शुद्धकार्यपर्याय कहा है। जो त्रिकाली अनंतस्वभावचतुष्टय कहा, उसमें भी प्रत्येक गुण की सहज पर्याय समाविष्ट है, अर्थात् साथ ही है, परंतु कारणशुद्धपर्याय में तो सभी अभेद हो जाता है अर्थात् उसमें तो सभी गुणों की त्रिकाली शुद्धपरिणति आ जाती है।

स्वभावपर्याय में कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय ऐसे दो भेद कहे थे, उसकी व्याख्या पूर्ण हुई। अब अर्थपर्यायरूप स्वभावपर्याय का वर्णन करते हैं—इसमें कारण और कार्य ऐसे भेद लागू नहीं पड़ते।

''पूर्व सूत्र में कथित सूक्ष्मऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से छह द्रव्यों की साधारण और सूक्ष्म ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना।''

(१) प्रथम, सहजशुद्धनिश्चयनय से कारणशुद्धपर्याय कही।

(२) पश्चात्, शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से कार्यशुद्धपर्याय कही। और

(३) इस तीसरे बोल में सूक्ष्मऋजुसूत्रनय की बात ली है।

यह स्वभावअर्थपर्याय छहों द्रव्यों में है, त्रिकाल है। छह द्रव्य की साधारणस्वभाव अर्थपर्यायरूप में इस पर्याय का वर्णन किया गया है। तथा जीव के लिये खास स्वभावपर्याय तो कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय जो ऊपर वर्णन हो चुकी है–वह है। जीव का अधिकार है, अतः प्रथम ही उसकी कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय ऐसी स्वभावपर्यायों को बताया, तत्पश्चात् छहों द्रव्यों की साधारणस्वभावपर्याय की बात की। इसप्रकार शुद्धस्वभाव–पर्याय का वर्णन हुआ।

यहाँ कहते हैं कि शुद्धपर्याय के भेद संक्षेप से कहे अर्थात् विस्तार से भी उनका कथन हो सकता है। पहले उपयोग के भेद बतलाये थे, उसमें ज्ञान–दर्शनगुण की अपेक्षा से पर्यायें ली थीं। यहाँ जो कारणशुद्धपर्याय कही वह समूचे द्रव्य की सम्मिलित पर्याय है, उसमें ज्ञान–दर्शन की त्रिकाली एकरूप शुद्धपर्यायें भी समा जाती हैं। भिन्न–भिन्न गुणों की पर्यायें जुदी न करके पूरे द्रव्य की कारणशुद्धपर्याय कही है। बाद में कार्यशुद्धपर्याय की बात की है।

अब अर्थपर्यायें कहते हैं—

''पूर्व सूत्र में कथित सूक्ष्मऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से, छह द्रव्यों की साधारण और सूक्ष्म ऐसी वे अर्थपर्यायें शुद्ध जानना अर्थात् वे अर्थपर्यायें ही शुद्धपर्याय हैं।''

उपर्युक्त अर्थपर्यायें क्षण–क्षण में उत्पादव्ययरूप हैं, इसलिये उन पर सूक्ष्मऋजुसूत्रनय लागू पड़ता है। जो कारणशुद्धपर्याय है, उसमें षट्गुणी हानि–वृद्धि नहीं है, वह तो ध्रुव एकरूप धारा से है। उस पर नैगम, संग्रह या व्यवहार कोई भी नय लागू नहीं होती; वह त्रिकाल सहज शुद्धनिश्चयनय से है। यह अर्थपर्यायें षट्गुणी हानि–वृद्धि सहित हैं और समय–समय उनका उत्पाद–व्यय होता है। उनका सूक्ष्म स्वभाव तो आगमगम्य है। वे अर्थपर्यायें सिद्ध में भी हैं और निगोद में भी है—परमाणु में भी हैं, स्कन्ध में भी हैं; सभी द्रव्यों में है। यह शुद्धपर्याय का संक्षिप्त वर्णन हुआ है, उसका विस्तार क्या?

यहाँ जो कारणशुद्धपर्याय कही उसमें सभी गुणों की पर्यायें आ गयीं, यदि उसका

विस्तार करें तो एक-एक गुण में उस-उस गुण की कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल वर्तती है। दूसरी कार्यशुद्धपर्यायें हैं। तीसरी अर्थपर्यायें कहीं। तथा इनके अतिरिक्त क्षण-क्षण में राग-द्वेष-अज्ञानादि अशुद्धपर्यायें होती हैं, उन्हें यहाँ नहीं लिया है। यहाँ तो अशुद्धपर्यायरूप में विभाव-व्यंजनपर्याय ही लेंगे।

प्रश्न—कारणशुद्धपर्याय साधक को क्या उपयोगी है?

उत्तर—वह वर्तमान कारणरूप है और वर्तमान कार्य प्रकट करना है, इसलिये उस कारण का आश्रय करने पर कार्य प्रकट हो जाता है। द्रव्य से वह कारणपर्याय कहीं भिन्न नहीं है। द्रव्य त्रिकाल जैसे का तैसा पूरा-पूरा वर्तमान में वर्त रहा है। अरे जीव! तू जब देखे तभी वर्तमान कारणपने परिपूर्ण द्रव्य है, अपनी आँखों के आलस्य से तूने देखा नहीं है। उस कारण का स्वीकार करने पर उसका आश्रय करते ही निर्मल कार्य प्रकट हो जाता है।

द्रव्य की स्व-आकार से वर्तती हुई त्रिकालपरिणति को यहाँ कारणशुद्धपर्याय कहा गया है, वही भूतार्थ है। संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष तो व्यवहार है; अभूतार्थ है। त्रिकाली पदार्थ तो द्रव्य-गुण और उसकी कारणरूप ध्रुवपरिणति अभेद—ऐसा आत्मा ही है। उसके आश्रय से मोक्षमार्ग और मोक्ष हो जाता है।

अहो! यह अलौकिक अचिन्त्य पदार्थ है। द्रव्य और गुण के स्व-आकार से वर्तती कारणशुद्धपर्याय है। इस द्रव्य-गुण और कारणशुद्धपर्यायरूप आत्मा ही भूतार्थ है। उसको मुख्य करके, उसका आश्रय कराने के लिये—संसार, मोक्षमार्ग तथा मोक्षपर्याय को गौण करके व्यवहार कहा, अभूतार्थ कहा और त्रिकाली में उसका अभाव कहा।

अब व्यंजनपर्यायें कही जाती हैं—

''जिससे व्यक्त हो-प्रकट हो वह व्यंजनपर्याय है। किस कारण से? पटादि की (वस्त्रादि की) माफिक चक्षुगोचर होने से (प्रकट होती है) अथवा सादि-सान्त मूर्त विजातीय विभावस्वभाववाली होने से, दिखकर नाश होने के स्वरूपवाली होने से।''

प्रथम आत्मा के आकार की बात करके पश्चात् जड़ देह के आकार की बात की है।

व्यंजनपर्याय के चार प्रकार बतायेंगे—

पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है।

त्रिकाली आत्मा वह पर्यायी है, पर्यायी अर्थात् द्रव्य; उसके भान बिना यह जीव शरीर आदि को एवं रागादि पर्याय को ही निजस्वरूप मानता है, इसलिये वह अज्ञानी पर्याय-स्वभाववाला होता है। पर्याय को ही अपना स्वरूप माने, उसका नाम पर्यायस्वभावी है, वह शरीरादि के संयोगवाली पर्याय को अपना स्वभाव मानता है, अत: वह चतुर्गति में नये-नये शरीर धारण करके भटकता है। 'एक-एक समय की क्षणिक अल्प-पर्याय जितना हूँ—शरीर के आकार से होनेवाली पर्याय वही मैं हूँ'—ऐसा अज्ञानी मानता है, अत: उसी को चार गति में भटकना पड़ता है।

मनुष्यपना, देवपना, नरकपना और तिर्यंचपना—यह पर्यायें ज्ञानी के होती ही नहीं, क्योंकि वह वस्तुस्वभाव की दृष्टिवाला है। अज्ञानी पर्यायमूढ़ जीव ही चारगति में मनुष्यादि पर्यायरूप से होता है।

(१) अज्ञानी पर्यायमूढ़ है, अत: शुभ-अशुभ मिश्रपरिणाम से वह व्यवहार से मनुष्य होता है। निश्चय से तो जीव है, वह ही है। व्यवहारदृष्टिवाला ही व्यवहार से मनुष्य होता है, किंतु वह तो उसे ही निश्चय मान बैठा है कि 'यह पर्याय है, वही मैं हूँ'। निश्चयदृष्टिवाला ज्ञानी मनुष्यादिरूप से होता नहीं। निश्चय से आत्मा तो त्रिकाल निजगुण-पर्यायों से एकाकार है। मनुष्याकार आदि पर्यायें तो क्षणिक हैं, वे आत्मा का स्वभाव नहीं हैं। अत: कहा कि अज्ञानी शुभाशुभ मिश्रपरिणाम से व्यवहार से मनुष्य होता है। उसकी मनुष्याकार पर्याय वह मनुष्यपर्याय है। वह अशुद्धव्यंजन पर्याय है।

(२) इसीप्रकार व्यवहारदृष्टिवाला जीव केवल अशुभपरिणाम से व्यवहार से नारक होता है। उसकी नारक आकार पर्याय वह नारकपर्याय है। निश्चय से तो आत्मा विभावव्यंजनपर्यायरूप से होता ही नहीं।

(३) किंचित् शुभमिश्रित मायापरिणाम से आत्मा व्यवहार से तिर्यंचकाय में जन्मता है—उसका आकार वह तिर्यंच पर्याय है।

निगोद से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक सभी जीव तिर्यंच हैं। आत्मा के प्रदेशों की आकृति तिर्यंच के शरीर प्रमाण होती है, वह तिर्यंचपर्याय है। वह विभावव्यंजनपर्याय है। जिसप्रकार लोटा के आकार प्रमाण ही उसमें रहनेवाले जल का आकार हो जाता है, उसी तरह

शरीरप्रमाण आत्मा का भी आकार हो जाता है, वहाँ अज्ञानी जीव उस देह और विभावपर्याय को ही अपना स्वरूप मान लेता है, अतः उसे ही विभावव्यंजनपर्याय गिना है।

(४) केवल शुभकर्म से व्यवहार से आत्मा देव होता है, उसका आकार वह देवपर्याय है।

यह चारों प्रकार की व्यंजनपर्यायें हैं, वे अशुद्ध पर्यायें हैं। इनका विस्तार अन्य आगम में देखें।

जो-जो शरीर मिलता है, उसी आकारवाला यह अज्ञानी जीव अपने को मान लेता है। तथा त्रिकाल स्वभाव को जानता ही नहीं—इसलिये उसकी विभावपर्यायों को ही अशुद्धपर्यायों में ले लिया है। रागादि की बात अशुद्धपर्याय में यहाँ नहीं ली गयी है। किंतु जो जीव विभावपर्याय को अपना स्वरूप मानते हैं, उन्हें तो वे राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्धपर्यायें होती हैं और जो त्रिकालीस्वभाव को जानते हैं, उनको सम्यग्दर्शनादि निर्मलपर्यायें होती हैं। इसप्रकार दोनों बातें उसमें गर्भित हो गयी हैं।

अब पन्द्रहवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः, सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णात बुद्धिः।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीतिमत्त्वा, स भवति परमश्रीकामिनी कामरूपः ॥२७॥

बहु विभाव होने पर भी, सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है, ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है' ऐसा मानकर, शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दरी का वल्लभ होता है।

चौबीसवें श्लोक में ऐसा कहा था कि—परभाव होने पर भी.... जो शुद्ध आत्मा को, एक को भजता है, ऐसा तीक्ष्ण बुद्धिवाला शुद्धपुरुष मुक्तिसुंदरी का वल्लभ होता है।

पच्चीसवें श्लोक में ऐसा कहा कि—हे भव्य शार्दूल! परमगुणपर्यायें होने पर भी... परब्रह्मरूप... समयसार को तू भज।

छब्बीसवें श्लोक में ऐसा कहा कि—जीवतत्त्व क्वचित् सहजपर्यायोंसहित और क्वचित् अशुद्धपर्यायोंसहित विलसता है। इन सबसे सहित होने पर भी इन सबसे रहित ऐसे जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिये भाता हूँ।

अब यहाँ सत्ताईसवें श्लोक में भी ऐसा कहते हैं कि—अहो! पर्याय में बहु विभाव होने

पर भी सहज स्वाभाविक परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है, वह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष शीघ्र मुक्ति प्राप्त करता है।

'परमतत्त्व का अभ्यास' कहकर चारित्र बतलाया। 'प्रवीण बुद्धि' कहकर सम्यग्ज्ञान बतलाया। और 'शुद्धदृष्टि' कहकर सम्यग्दर्शन बतलाया।

ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला पुरुष शीघ्र मुक्ति प्राप्त करता है।

प्रवीण कौन है ? कि जिसकी बुद्धि अपने परमसहजतत्त्व में लगी है। शुद्धदृष्टिवाला वह पुरुष ऐसा मानता है कि 'इस समयसार से अन्य कुछ नहीं है, मेरे एकाकार सहज स्वभाव के अतिरिक्त किसी अन्य को जगत में मैं देखता नहीं; क्योंकि मेरे में उन सबका अभाव है। क्षणिक विभाव का भी मेरे में अभाव है। मैं तो शुद्धकारणपरमात्मा समयसार हूँ।'

अहो! 'जिन' और 'जीव' एकाकार हैं। सभी आत्मायें सिद्धिरूपी लता के कन्द हैं, एक-एक आत्मा अमृत की लता का फल है। अज्ञानी भले ही अपने को पर्याय जितना ही माने, किंतु ज्ञानी तो कहते हैं कि वह व्यवहार से ही मनुष्यादि पर्यायरूप हुआ है, निश्चय से तो वह सिद्धसदृश ही है।

जो जीव विभाव की दृष्टि छोड़कर अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान करके उसकी भावना में एकाग्र होता है, वह जीव शीघ्र परमश्रीरूपी सुंदर का वल्लभ होता है।

जगत में सुंदर से सुंदर वस्तु तो आत्मा की आनंदमय मुक्त दशा ही है। ऐसी दशा प्रकट हो जाने के पश्चात् उसका कभी विरह नहीं होता।

इसप्रकार पंद्रह गाथायें पूर्ण हुईं। त्रिकालीद्रव्य, गुण और कारणशुद्धपर्याय का वर्णन किया। ऐसे जीव को जो मानता है, वही मुक्ति पाता है। और उसको बिना जाने रागादि पर्यायों को ही जो अपना स्वरूप मानता है, वह जीव चतुर्गति में भ्रमण करता है। ●

नये प्रकाशन

पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य - ६५ पैसे

सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १ - २५ पैसे

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

किसी अवधिज्ञानी का विकास अधिक दिखता है, परमाणु को भी देखे ऐसा किसी को ज्ञान हो, तब ज्ञानी को दूसरे का उतना अधिक विकास देखकर स्वयं का अल्प विकास देख हीनता अथवा दीनता नहीं होती और खेद नहीं होता। और फिर किसी ज्ञानी को अवधिज्ञान का विकास बहुत हो, किसी मुनि को मनःपर्ययज्ञान हो और समक्ष के जीव के विचार भूत-भविष्य के भी जाने, तब भी ज्ञानी को उसका गर्व नहीं होता। और किसी श्रुतज्ञानी को मनःपर्ययज्ञान न हो, तब वह मनःपर्ययज्ञान की भावना नहीं करता। स्वयं की, उसी प्रकार दूसरों की हीन (अल्प) अथवा अधिक ज्ञान की पर्याय को जैसी है वैसी जानता है।

केवलज्ञान पर्याय द्रव्य से भेदरूप है, इसलिये यह भेद अशुद्धनय का विषय है। केवलज्ञानी को नय नहीं होता, वे तो संपूर्णदशा को प्राप्त हुए हैं। अवधिज्ञान मर्यादित रूपीपदार्थों को जानता है। मनःपर्ययज्ञान दूसरों के विचारों को जानता है। यह ज्ञान आंशिक प्रत्यक्ष है, इसलिये इसमें नय नहीं है।

मन का विषय अल्प है, इसलिये इसमें नय नहीं है। श्रुतज्ञान यह मतिज्ञान की उत्तरतर्कणा है, इसलिये इसमें नय होता है। श्रुतज्ञानी अशुद्धनय से मार्गणा को खोजता है और विचारता है कि जगत में केवलज्ञान प्राप्त किये हुए अनंत आत्मायें हैं। केवलज्ञानी प्रत्यक्ष जानते हैं, श्रुतज्ञानी परोक्ष जानते हैं। श्रुतज्ञानी केवलज्ञान की मार्गणा का खोजक है, केवलज्ञान की पर्याय को प्रतीति में लेता है। वह पर्याय परिपूर्ण है, मार्गणा-शोधक को ऐसी प्रतीति हुई है। तब भी केवलज्ञानपर्याय की भावना नहीं है। धर्मीजीव को केवलज्ञान के विकल्प की उमंग या आकांक्षा नहीं होती, उसीप्रकार स्वयं के अपरिपूर्ण मतिश्रुतज्ञान का खेद नहीं। क्योंकि वह स्वरूप की श्रद्धा में स्वयं निःशंक है।

जैसे लड्डू खानेवाले को श्रद्धा है कि यह लड्डू छोटे से गले में से नीचे उतरेगा और

पच जायेगा, इसमें उसको जरा भी शंका नहीं होती। उसीप्रकार भावश्रुतज्ञानी निःशंक है कि इस जगत में केवलज्ञानी हैं, मैं आत्मा ज्ञानस्वभावी हूँ, मुझमें वर्तमान में अल्पज्ञता है, उसका व्यय होकर परिपूर्ण दशा एक-दो भव में होगी। स्वयं के केवलज्ञान के लिये अनंत भव होंगे— उसको ऐसी शंका नहीं होती। मैं केवलज्ञान अल्प समय में प्राप्त करूँगा। मेरे पहिले अनंत जीव इसप्रकार हो गये और भविष्य में होंगे। मैं अपने स्वभाव की प्रतीति कर पूर्ण बनना चाहता हूँ तब मेरे लिये अनंत काल हो नहीं सकता। साधक को केवलज्ञान प्रगट करने में अनंत काल नहीं होता है, किंतु वह अल्पकाल में ही केवली हो जाता है।

अल्पकाल अनंत काल के हिसाब से अनंतवें भाग है। यदि मैं अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त कर सकूँगा तो अनंत काल के हिसाब से अनंत केवली हो गये हैं, हो रहे हैं और अनंत होंगे, ऐसा वह जानता है। धर्मीजीव की दृष्टि तो गुणीद्रव्य पर है, उसकी वर्तमान पर्याय केवलज्ञान को खोजती है। जगत में केवलज्ञान वाले जीव हैं, वे अनंत हैं। इस क्षेत्र में केवलज्ञानी नहीं हैं, तब दूसरे क्षेत्र में केवलज्ञानी हैं, इसलिये दूसरे क्षेत्र से भी सिद्ध होते हैं। और फिर केवलज्ञान होने के पश्चात् केवली को शरीर में रहने का अनंत समय नहीं होता। तथा केवलज्ञान के पश्चात् सिद्ध होने में असंख्य वर्ष नहीं लगते हैं। शरीर होने पर भी केवलज्ञान हो सकता है और केवलज्ञान होने के पश्चात् शरीर में रहने का समय असंख्य वर्ष नहीं होता।

इस क्षेत्र में वर्तमान में केवलज्ञानी नहीं हैं, अतएव इस जगत में केवलज्ञानी बिल्कुल नहीं ही हैं, ऐसा नहीं होता है। इस क्षेत्र में केवलज्ञानी नहीं हैं, तब भी ज्ञानी को उसकी शंका नहीं होती। यदि केवलज्ञानी के संबंध में शंका पड़े अथवा स्वयं के भव के संबंध में शंका पड़े, तब उसको केवलज्ञान की बात तो जमी ही नहीं, किंतु एक भी ज्ञान की बात उसको जमी नहीं है।

अब मार्गणा शोधनेवाले अज्ञानमार्गणा की शोध करते हैं। स्वयं को अज्ञान नहीं है लेकिन जगत में अज्ञानी जीव हैं, उनकी शोध-खोज करते हैं।

राग से अथवा निमित्त से लाभ माननेवाले अज्ञानी कुमतिज्ञानी जीव संसार में हैं। आत्मज्ञान के बिना केवल शास्त्रों के पढ़नेवाले कुमतिज्ञानवाले हैं। जैसे केवलज्ञान के धारक अनंत हैं, वैसे कुमति के धारक अनंत हैं। आत्मा के ज्ञान बगैर राग से धर्म माननेवाले द्रव्यलिंगी

मुनि कुमतिवाले हैं। ग्यारह अंग के पढ़नेवाले द्रव्यलिंगी मुनि से लेकर निगोद तक के मिथ्यादृष्टि जीव कुमतिज्ञान के धारक हैं।

मार्गणा-शोधक साधक और बाधक सबका निश्चित करता है, वह पर्याय की शक्ति बतलाते हैं, वह द्रव्य के अवलंबन से हुई सम्यक्ता को बतलाते हैं।

व्यवहार से और राग से लाभ माननेवाले जीव मिथ्यादृष्टि हैं। फिर भले वे ग्यारह अंग नौ पूर्व के पाठी हों तब भी उनका ज्ञान कुश्रुतज्ञान है।

किसी मिथ्यादृष्टि को विभंगज्ञान हो, अमुक द्वीप समुद्र आदि का विचार आये, किंतु उसको आत्मा का विचार नहीं आता। आत्मा स्वयं सिद्धतत्त्व है, यह बात उसको जमती नहीं है। उसको क्रियाकांड का पक्ष रहता है। किसी मिथ्यादृष्टि को कदाचित् विभंगज्ञान हो और धर्मीजीव को अवधिज्ञान न हो, तब भी धर्मी जीव को इसप्रकार की दीनता नहीं होती कि मुझे अवधिज्ञान नहीं है। कारण कि मेरा ज्ञान पर से नहीं है तथा मैं पर को जाननेवाला हूँ, इसलिये मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा भी नहीं है। मैं तो अखंड ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा भान उसको होता है, वह धर्मीजीव विभंगज्ञानी को शोधता है।

(८) संयममार्गणा—अब धर्मी जीव संयममार्गणा शोधता है। मार्गणा-शोधक को सभी प्रकार का चारित्र होता ही है, ऐसा नहीं होता है। चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थान में रहनेवाले श्रुतज्ञानी चारित्र के भेद का विचार करते हैं। अखंड वस्तु की अपेक्षा से चारित्र के सात भेद अशुद्धनय का विषय है और इससे वह आदरणीय नहीं है, मात्र शुद्धद्रव्य ही आदरणीय है।

सामायिकचारित्र—आत्मा के भानसहित उसमें तन्मयता-तल्लीनता करने से राग की अनुत्पत्ति, यह सामायिक है। यह चौथे, पाँचवें गुणस्थान में नहीं होता है। लेकिन सामायिकचारित्र कैसा हो—इसका ज्ञान होता है। स्वयं को सामायिक की वीतरागता नहीं है ऐसा जानता है। चैतन्यशुद्धद्रव्य के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक एकाग्रता करना यह सामायिकचारित्र है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान के बिना नहीं होती। सामायिक कहाँ होती है-सम्यग्ज्ञानी को इसका विचार और विवेक होता है।

यह जीवद्रव्य है, इसका अनंत चैतन्यस्वभाव भाव है, यह परमपारिणामिक ज्ञायकभाव है, यह सम्यग्दर्शन का तथा शुद्धनय का विषय है। यह वर्तमान पर्याय स्वयं की

तथा पर की है—यह अशुद्धनय का विषय है। आध्यात्मिक दृष्टि से मार्गणास्थान, जीवस्थान इत्यादि भेद अभूतार्थ हैं—उसको व्यवहारनय का विषय कहा है। यह एकरूप स्वभाव नहीं है, इसलिये शरण लेने जैसा नहीं है। मात्र एकरूप स्वभाव का शरण लेना योग्य है। वही सुख का कारण है। उस समय जो सम्यक् श्रुतज्ञान प्रगट होता है, उसमें एक नय अनादि-अनंत एकरूप जो स्वभाव है, उसको पकड़ता है, और दूसरा नय स्वयं की तथा पर की पर्याय को पकड़ता है, उसके द्वारा साधक जीव पर्याय का यथार्थ ज्ञान करता है।

अखंड दृष्टि के उपरांत विशेष शांति समता भाव प्रगट होती है—वह सामायिक है। वह मुनि को होती है। उस समय शरीर नग्नावस्थारूप होता है, उसकी यहाँ बात नहीं है। स्वभाव के अवलंबन से जो स्थिरता अथवा वीतरागता प्रगट हुई—वह सामायिक है। किंतु वह, भेद होने से अशुद्धनय का विषय है। निचली अवस्था में सम्यग्दृष्टि को सामायिक नहीं होती है। लेकिन मुनि को कैसी सामायिक होती है—उसका ज्ञान करता है।

छेदोपस्थान—मुनि स्वयं के चारित्र में जब स्थिर नहीं रह सकता तब उनको २८ प्रकार के मूलगुणों के पालन करने का विकल्प उठता है। पाँच समिति का पालना, अचेलकत्व, अदंतधोवन, एक बार खड़े-खड़े आहार का विकल्प होता है। उस समय अखंड स्वभाव की तन्मयता भंग हुई और मूलगुण पालन करने का विकल्प आया। अथवा २८ मूलगुण में दोष लगे उसके प्रायश्चित्त को छेदोपस्थापनचारित्र कहते हैं।

स्वयं की वर्तमान पर्याय—उसीप्रकार दूसरों की वर्तमान पर्याय का क्या स्वरूप है? उसको (पर्याय को) चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थानवाला जीव इस मार्गणा द्वारा शोध-खोज कर विचार करता है।

परिहारविशुद्धि—किसी मुनि को ऐसा चारित्र होता है। उनको इसप्रकार की लब्धि होती है कि वे जल अथवा हरी दूब पर चलें तब भी उनके निमित्त से पैर के नीचे के जीवों को दुःख नहीं होता है। जिस धर्मी को ऐसी ऋद्धि नहीं होती वह दूसरों की पर्याय का ज्ञान त्रिकाल की दृष्टि रखकर करता है।

सूक्ष्मसांपराय—यह दसवें गुणस्थान की पर्याय है। इसमें अल्पकषाय शेष है। इस भूमिकावाले को विकल्प नहीं होता, नीचे की भूमिकावाला इसका विचार करता है।

यथाख्यात—यह चारित्र ११, १२, १३, १४वें गुणस्थान में होता है। इसमें आत्मा

अकषायी जैसा है (सांपरायिक आस्रव से रहित) ऐसा प्रसिद्धि प्राप्त है—उसको यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह भी पर्याय है, त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा भेद हुआ, इसलिए यह भी अशुद्धनय का विषय है।

ऐसे भेद सर्वज्ञ के आगम में बताये गये हैं, अन्यत्र कहीं नहीं है। सर्वज्ञदेव तीर्थंकर—जिनको इन्द्र नमस्कार करते हैं, जो समवसरण में विराजते हैं, वे यथाख्यातचारित्रयुक्त हैं। ऐसे चारित्रवाले लाखों केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं।

धर्मी जीव विचार करता है कि आत्मा के श्रद्धाज्ञान करने से मुझे स्वरूपाचरण प्रगट हुआ है, तब वह वृद्धि प्राप्त कर अल्प समय में यथाख्यातचारित्र होगा। विकल्प यह चारित्र नहीं है, किंतु मैं ज्ञायक स्वभावी हूँ, ऐसा ज्ञान और प्रतीति होने के बाद क्रमशः पूर्ण चारित्र प्रगट करनेवाले जीव इस काल में है। भले ही इस क्षेत्र में इस समय केवली न हों, किंतु दूसरी जगह होने चाहिए। इस समय ऐसे जीव महाविदेहक्षेत्र में विहार करते हैं और पहले भरतक्षेत्र में तथा ऐरावत क्षेत्र में थे। इस प्रकार यथाख्यातचारित्र की प्रतीति और ज्ञान करता है। उसी समय त्रिकालीस्वभावपने से एकरूप हूँ ऐसा भी ज्ञान करता है।

संयमासंयम—यह पाँचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक की अवस्था की बात है। आत्मा का भान और ज्ञान हुआ है तथा कुछ लीनता है और कुछ असंयम है। ऐसी दशा गृहस्थाश्रम में होती है। ऐसी दशा स्वयं को हो, तो स्वयं को; उसी प्रकार पर की दशा जैसी है वैसी जानता है।

असंयम—पहिले से चौथे गुणस्थान तक असंयम अवस्था होती है। मिथ्यादृष्टि जीव जिसको आत्मा का भान नहीं है-वह बाह्यरूप से शील संयम पालता हो, शरीर के खंड-खंड टुकड़े होने पर भी क्रोध न करे, २८ मूलगुणों का पालन करता हो, ग्यारह अंग का ज्ञान हो— तब भी वह असंयमी है, क्योंकि उसको आत्मा का भान नहीं है। चौथे गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि असंयमी है, आत्मा का भान है; किंतु संयम नहीं है। भरत बाहुबली दो भाई परस्पर में लड़े, फिर भी आत्मा का भान था और अल्प द्वेष था। वे जानते हैं कि यह अपराध है, शांति को लूटनेवाला है।

इसप्रकार संयममार्गणा के सात भेद हुए।

(९) दर्शनमार्गणा—आत्मा दर्शनादि अनंत गुणों का पिंड है, ऐसी शुद्ध दृष्टि होने पर दर्शन का वर्तमान में कौन सा उपयोग हो रहा है, धर्मी जीव उसको अशुद्धनय से जानता है। स्वयं

को स्वयं की भेदपूर्वक जानकारी नहीं है, किंतु उसका कार्य होता है, इसप्रकार ज्ञान जानता है।

चक्षुदर्शन—रूप जानने के पहिले आत्मा का स्वसन्मुख प्रयत्न होता है, उसको चक्षुदर्शन कहते हैं। धवलग्रंथ में शिष्य ने प्रश्न किया कि चक्षुदर्शन का शब्दार्थ तो आँख से देखना होता है, तब आप गाथा का तोड़-मरोड़कर अर्थ क्यों करते हो? उसका समाधान आचार्यदेव करहते हैं कि हम तोड़-मरोड़ कर अर्थ नहीं करते हैं, किंतु शब्दों के भाव-अनुसार अर्थ करते हैं। भगवान को अथवा कागज को आँख से देखो, तो यह चक्षुदर्शन नहीं है, किंतु ज्ञान-उपयोग है। इस ज्ञानोपयोग होने के पहिले आत्मा का सामान्य सत्तामात्र व्यापार, यह चक्षुदर्शन है।

सिद्धांतशास्त्र में स्वयं का अवलोकन—इसको दर्शन कहते हैं, और न्यायशास्त्र में दर्शन की व्याख्या सामान्य अवलोकन की है। इसप्रकार भिन्न-भिन्न अपेक्षा से समझना चाहिये। रूप जानने के पूर्व आत्मा में सामान्य सत्ता का विचार आना अथवा पृथक् वस्तु के विचार आने के पूर्व आत्मा में जो प्रयत्न होता है, वह चक्षुदर्शन है। चक्षुदर्शन के उपयोग के समय चक्षुदर्शन स्वयं को नहीं जानता, लेकिन बाद में ज्ञान जानता है। उसीप्रकार चक्षुदर्शन में अन्य कोई वस्तु नहीं जानी जाती। यह भगवान हैं ऐसा विचार अथवा ऐसी परिच्छिन्नता दर्शन में नहीं होती, फिर भी चक्षुदर्शन के समय अचक्षुदर्शन नहीं होता, ऐसा धर्मी जानता है। धर्मी जीव को—स्वयं का आत्मा दर्शनादि गुणों का भंडार है—ऐसी दृष्टि होने पर भी वर्तमान पर्याय चक्षुदर्शन की विद्यमान हो तब उसको अशुद्धनय से जानता है।

अचक्षुदर्शन —शब्द, गंध, रस, स्पर्श, स्वप्न, संकल्प, विकल्प आदि का ज्ञान होने के पूर्व आत्मा में सामान्य व्यापार (प्रवृत्ति) विद्यमान रहता है—यह अचक्षुदर्शन है। इसमें यह शब्द है—ऐसा भेद नहीं होता।

धर्मात्मा श्रुतज्ञानी त्रिकालीद्रव्य, गुण तथा वर्तमान पर्याय कैसी है—वह शोधता-खोजता है। केवलज्ञानी प्रत्यक्ष जानते हैं और श्रुतज्ञानी परोक्ष जानते हैं। आत्मा द्रव्य है, दर्शन गुण है, चक्षु-अचक्षुदर्शन उसकी पर्याय है। द्रव्य कारण है और पर्याय कार्य है। तब उसकी कार्यदशा पूर्ण है, अपूर्ण है अथवा विपरीत है, धर्मी जीव उसका ज्ञान करता है। अनंत गुणों के पिंड आत्मा को स्वीकार किया, उसको (आत्मा को) पर्यायरूपी कार्य कैसा होता है, इसका यथार्थ ज्ञान होता है।

अवधिदर्शन—अवधिज्ञान होने के पूर्व अवधिदर्शन होता है। आत्मज्ञानी जीव मरकर

नारकी, पशु, मनुष्य नहीं होता, किंतु कल्पवासी देवों में पैदा होता है। 'मैं शुद्ध चैतन्य हूँ'—ऐसी स्वीकारोक्ति होने से जन्म लेते ही विचार करता है कि 'मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ', किंतु पर्याय में पूर्णता नहीं है। पूर्ण पर्याय को प्राप्त प्रभु कहाँ है ? भगवान किस क्षेत्र में हैं ? तथा दिव्यध्वनि खिरती है कि नहीं ? इसका विचार अवधिज्ञान द्वारा करता है। ज्ञान होने के पूर्व का व्यापार (प्रवृत्ति) यह अवधिदर्शन है।

इंद्रों की आयु-स्थिति पूर्ण होने को आये तब अवधिज्ञान से जान लेते हैं। वे विचारते हैं कि मनुष्य की आयु अल्प होती है, इस हिसाब से मनुष्य हमको अमर कहते हैं, परंतु हम भी अमर नहीं है। ३३ सागर की आयुवाले भी चले जाते हैं। वे अंतिम समय वैराग्य प्राप्त करते हैं और शाश्वत् प्रतिमा (अकृत्रिम मूर्ति) पर हाथ रखते हैं और शरीर छोड़ देते हैं। इसप्रकार अवधिज्ञान से स्वयं के शरीर की स्थिति देखी। ऐसा ज्ञान होने के पूर्व का सत्तामात्र व्यापार, यह अवधिदर्शन है।

केवलदर्शन—छद्मस्थ जीव दर्शनपूर्वक ज्ञान करता है। केवली भगवान को केवलदर्शन और केवलज्ञान एक समय में होते हैं। अनंत सिद्धों को और लाखों केवलियों को एक समय में केवलदर्शन और केवलज्ञान होता है। उसका विचार श्रुतज्ञानी करता है, अल्पज्ञान में केवलदर्शन का विचार करता है।

जैसे चावल, हीरा, मिर्ची वगैरेह के व्यापारी अपनी-अपनी बिक्री का माल कहाँ पैदा होता है, उसकी खोज करते हैं; वैसे भावश्रुतज्ञानी केवलदर्शन और केवलज्ञान कहाँ उत्पन्न होते हैं—उसकी खोज करता है। भले ही वर्तमान के भरतक्षेत्र में वे (केवलदर्शन केवलज्ञान) उत्पन्न नहीं होते, लेकिन महाविदेह क्षेत्र में केवलदर्शन प्राप्त जीव भी हैं और वर्तमान में केवलज्ञान प्रगट करनेवाले जीव भी हैं। स्वयं की वर्तमान पर्याय में प्रगट नहीं है, किंतु स्वयं के चैतन्य के समीप में पैदा होता है, उसका विवेक करता है। इसप्रकार दर्शन के चार भेद हैं। त्रिकाली द्रव्य में वे भेद हैं, इससे अशुद्धनय का विषय है। क्योंकि केवलदर्शन वगैरह त्रिकाली द्रव्य के भेद हैं, अंश हैं। इसप्रकार मार्गणा का धर्मी जीव ज्ञान करता है। (क्रमशः)

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– पर के लक्ष्य से आत्मा में नहीं जाते यह तो ठीक है, तो क्या शास्त्र-वाँचन से भी आत्मा में नहीं जाते ?

उत्तर– हाँ, शास्त्र वाँचने के विकल्प से भी आत्मा में नहीं जाते।

प्रश्न– तो क्या हमें शास्त्र नहीं वाँचना चाहिये ?

उत्तर– आत्मा के लक्ष्य से शास्त्राभ्यास करना ऐसा श्री प्रवचनसार में कहा है तथा श्री समयसार की प्रथम गाथा में आचार्यदेव ने कहा है कि तू अपनी पर्याय में सिद्धों की स्थापना करके सुन। इसका अर्थ यह हुआ कि तू सिद्धस्वरूप है—ऐसी श्रद्धा-प्रतीति करके सुने। सिद्धस्वरूप में दृष्टि जोड़ी है अर्थात् सुनते और वाँचते हुए भी स्वरूप में एकाग्रता की वृद्धि होगी।

प्रश्न– यदि पूजा-भक्ति आदि शुभराग में धर्म नहीं है तो श्रावक के लिये धर्म क्या है ?

उत्तर– देह-मन-वाणी-राग से भिन्न आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करना तथा आत्मा का अनुभव करना यही श्रावक का धर्म है।

प्रश्न– तब क्या श्रावक पूजा-भक्ति आदि कार्य न करे ?

उत्तर– श्रावक को पूजा-भक्ति आदि का शुभराग आता है, होता है, आये बिना रहता नहीं; परंतु वह धर्म नहीं है, शुभराग है, और इससे भिन्न आत्मा का अनुभव करना वही धर्म है।

प्रश्न– पुण्य प्राप्त हो ऐसा कौन सा धन्धा है ?

उत्तर– सच्चे जैन शास्त्रों का वाँचन, विचार, श्रवण करे तो पुण्य बन्ध हो और यदि उसमें सच्ची समझ करे तो चौरासी के भ्रमण से छुटकारा मिल जाये अर्थात् मुक्ति प्राप्त हो।

प्रश्न– द्रव्यलिंगी को शुभ में ही रुचि है या अशुभ में भी ?

उत्तर– द्रव्यलिंगी को शुभ में ही रुचि है।

प्रश्न– काया और कषाय में एकत्व है उसका विचार उसको आता है या नहीं ?

उत्तर– उसका विचार उसको नहीं आता।

प्रश्न– तो धारणाज्ञान भी उसको सच्चा नहीं हुआ ?

उत्तर– तत्त्वों के जानपने का धारणाज्ञान तो सच्चा है, परंतु स्वयं कहाँ अटकता है, वह उसकी पकड़ में नहीं आता। कषाय की विशेष मन्दता है, उसी में स्वानुभव मानता है।

प्रश्न– अभेदस्वरूप आत्मा की अनुभूति हो जाने के बाद व्रतादि करने से क्या लाभ ?

उत्तर– शुद्धात्मा का अनुभव होने के बाद पंचम-षष्ठम् गुणस्थानों में उस-उस प्रकार का राग भूमिकानुसार आये बिना रहता नहीं। वह शुभराग बंध का ही कारण है और हेय है—ऐसा ज्ञानी जानता है। शुद्धता की वृद्धि अनुसार कषाय घटती जाती होने के कारण व्रतादि का शुभराग आये बिना रहता ही नहीं—ऐसा ही स्वभाव है।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ : पूज्य स्वामीजी सुख शांति से विराजमान हैं। प्रतिवर्षानुसार १५-८-७८ से २० दिवसीय प्रौढ़-शिक्षण शिविर प्रारंभ होगा। २०-८-७८ को सम्माननीय बहन श्री चंपाबेन का जन्म दिवस मनाया जायेगा। इसी दिन से गतवर्षानुसार १५ दिवसीय प्रवचनकार प्रशिक्षण शिविर भी प्रारंभ होगा। आत्मार्थी व प्रवचनकार बंधु समय पर पधारकर धर्मलाभ लेवें।

जयपुर में अध्यात्मरस की अमृत वर्षा

श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में दिनांक ३०-७-७८ से श्रीमान् श्री लालचंदभाई मोदी एवं पंडित बाबूभाई मेहता के अध्यात्मरस से ओतप्रोत प्रवचनों की अमृत वर्षा हो रही है। पंडित लालचंदभाई के प्रवचन प्रातः कलशटीका एवं सायं समयसार के जीव-अजीव अधिकार पर हो रहे हैं। दोपहर में उनके द्वारा तत्त्वचर्चा एवं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा

कर्ता-कर्म अधिकार पर प्रवचन होते हैं। आदरणीय बाबूभाईजी के प्रवचन प्रातः बड़े मंदिर में एवं सायं श्री टोडरमल स्मारक भवन में मोक्षमार्गप्रकाशक पर दिनांक ४-८-७८ तक हुए। प्रातः ५ बजे से लेकर रात्रि १० बजे तक ५-६ घंटे का कार्यक्रम चलता है। पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा भी कुछ दिनों के लिये पधारे। उनके प्रवचनों का आयोजन श्री दि० जैन बड़ा मंदिर, घी वालों का रास्ता एवं दिगम्बर जैन मंदिर, आदर्शनगर में किया गया।

आध्यात्मिक विद्वानों के सत्समागम में रहने के लिये आनेवाले मुमुक्षु भाईयों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। सभी कार्यक्रमों में समाज बड़े उत्साह से भाग ले रही है। स्मरण रहे कि श्री लालचंदभाई यहाँ १३ अगस्त तक रहेंगे।

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की मीटिंग संपन्न

जयपुर : दिनांक २-८-७८ को तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टियों की आवश्यक बैठक श्री टोडरमल स्मारक भवन में संपन्न हुई। बैठक में सर्व प्रथम इस ट्रस्ट द्वारा संचालित टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की प्रगति-रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा प्रगति पर संतोष व्यक्त किया।

ट्रस्ट द्वारा संचालित जैन लिटरेचर इंस्टीट्यूट बैंगलोर की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। इन्स्टीट्यूट कन्नड़ ताड़पत्रीय शास्त्रों की विस्तृत सूची तैयार कर रही है। डेढ़ माह के अल्पकाल में ही लगभग ३०० ग्रंथों का सर्वेक्षण किया जा चुका है। तीर्थ सर्वेक्षण के कार्य को भी शीघ्र प्रारंभ करने के लिये निर्णय लिया गया। मीटिंग में श्री शशिभाई एम. सेठ, भावनगर को स्व० श्री नवनीतभाई जवेरी, बम्बई के स्थान पर ट्रस्टी मनोनीत किया गया।

— बसंतभाई दोशी

महाविद्यालय के छात्रों को अपूर्व लाभ

जयपुर : श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के कार्यक्रमों के अंतर्गत दिनांक १२-७-७८ से दिनांक २७-७-७८ तक १५ दिन के लिये पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर न्यायतीर्थ शोलापुर से पधारे। महाविद्यालय के छात्रों को न्यायदीपिका तथा परीक्षामुख का अध्ययन कराया। मोक्षमार्गप्रकाशक के उभयाभासी प्रकरण पर आपके प्रवचन भी हुए। हम उनके तथा जैन संस्कृति संघ शोलापुर के आभारी हैं, जिन्होंने उन्हें भेजकर हमें अनुगृहीत किया।

— ब्र० अभिनंदनकुमार जैन

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय को अभूतपूर्व सफलता

जयपुर : गत वर्ष स्थापित श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों ने श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय के माध्यम से राजस्थान बोर्ड की उपाध्याय परीक्षा में अभूतपूर्व सफलता अर्जित कर कीर्तिमान स्थापित किया है। श्री अभयकुमारजी जबलपुर, श्री श्रेयांसकुमारजी बरायठा तथा श्री राकेशकुमार नागपुर ने क्रमशः ८७ %, ७२ %, एवं ७० % अंक प्राप्त कर संपूर्ण बोर्ड में क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त किया है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री जतीशचंद, अभिनंदनकुमार तथा सुदीपकुमार भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। विद्यालय का परीक्षाफल शतप्रतिशत रहा है।

साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न

जयपुर : ३ अगस्त १९७८ को श्री लालचंदभाई की अध्यक्षता में टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों की साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न हुई। गोष्ठी में 'आत्महित में संस्कृत का योगदान' विषय पर विभिन्न छात्रों ने विचार व्यक्त किये। सभा को संबोधित करते हुए श्री लालचंदभाई ने आत्मकल्याण में जिनागम का मर्म समझने हेतु संस्कृत भाषा सीखने की आवश्यकता प्रतिपादित की।

नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के ऑनरेरी निरीक्षक श्री मांगीलालजी अग्रवाल तथा पंडित रमेशकुमारजी ललितपुर ने उदयपुर संभाग के उदयपुर, साकरोदा, बल्लभनगर, लूणदा, झाडोल (समतडा), सेमारी, कल्याणपुर, फलासिया तथा टोकर में चल रही वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का निरीक्षण किया। निरीक्षण के दौरान उनकी ही प्रेरणा व प्रवचनों से प्रभावित होकर फलासिया, झाडोल (फलासिया) तथा उदयपुर (महिलाश्रम) में नवीन पाठशाला की स्थापना हुई। कुछ पाठशालायें निष्क्रिय थीं, उन्हें प्रोत्साहन देकर पुनः जागरूक किया और वे अब व्यवस्थित हैं।

निरीक्षण में आत्मार्थी नवयुवक मंडल, उदयपुर तथा श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, उदयपुर के सदस्यगण सर्वश्री धर्मचंदजी गदिया, अजितकुमारजी बंडी, उग्रसेनजी बंडी, रंगलालजी बोहरा आदि का सराहनीय सहयोग रहा है।

ध्यान रहे कि श्री मांगीलालजी अग्रवाल ने उदयपुर संभाग की पाठशालाओं के निरीक्षण एवं नवीन पाठशालाऐं खोलने का महत्त्वपूर्ण कार्य ऑनरेरी रूप से करने की घोषणा उदयपुर शिविर में की थी। उसे उन्होंने मूर्त रूप दिया है, आगे भी सक्रिय रहने का वचन दिया है।

— मंत्री, भारतवर्षीय वी० वि० पाठशाला समिति

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन द्वारा शिक्षण शिविर का आयोजन

खनियाधाना (म०प्र०) : अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में यहाँ पाँच दिवसीय शिक्षण शिविर का सफल आयोजन किया गया। शिविर में फैडरेशन के विशेष आग्रह पर पंडित अभयकुमारजी एम.कॉम. जयपुर, पंडित ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी जयपुर एवं पंडित राजकुमारजी जयपुर यहाँ पधारे। आपके प्रतिदिन तीनों समय के प्रवचनों से स्थानीय तथा समीपस्थ क्षेत्रों के जैन-अजैन बंधुओं ने अपूर्व लाभ लिया। अंतिम दिन विद्वद्वर्ग को नवीन गठित शाखा के पदाधिकारियों द्वारा समारोहपूर्वक भावभीनी विदाई दी गयी।

— शिखरचंद जैन पुजारी

तमिलनाडु में तत्त्वज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

निरुप्परम्बूर (जिला उत्तर आर्काड), किला प्रदेश (जिला तंजाऊर), करन्दहांगुडि (जिला तंजाऊर) में तत्त्वावधान पाठशालायें प्रारंभ की गईं। इन पाठशालाओं में क्रमशः श्री गणपति जैन, श्री ए० चक्रवर्ती जैन, तथा श्रीमती राजलक्ष्मी अध्यापन कार्य कर रहे हैं। सभी पाठशालाओं में पुरुष-महिलाएँ तथा बालक-बालिकायें अच्छी संख्या में उपस्थित होकर धर्म लाभ ले रहे हैं।

— भरत चक्रवर्ती

पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा द्वारा धर्मप्रभावना

सनावद (म०प्र०) : अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर दिनांक १२-७-७८ से २१-७-७८ तक श्री सिद्धचक्र मंडल विधान में पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले पधारे। उनके प्रतिदिन प्रातः मोक्षमार्ग प्रकाशक पर तथा सायं छहढाला पर हृदयग्राही मार्मिक प्रवचन चलते थे। रात्रि को पंडित जतीशचंदजी बच्चों की कक्षायें लेते थे। इस अवसर पर सागर से पधारे पंडित पन्नालालजी साहित्यचार्य के भी दो प्रवचन हुए। विधान का कार्य पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' अशोकनगरवालों द्वारा संपन्न कराया गया।

वीतराग-विज्ञान पाठशाला, उज्जैन के छात्रों द्वारा प्रस्तुत अकलंक-निकलंक नाटक एवं स्थानीय भजन मंडली द्वारा भक्ति से ओत-प्रोत भजन प्रस्तुत किये गये।

इस अवसर पर दो हजार रुपये की राशि श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को प्राप्त हुई, लगभग ५०० रुपये का साहित्य बिका तथा आत्मधर्म के ४५ नवीन ग्राहक बनाये गये। अंतिम दिन विशाल रथयात्रा निकाली गयी।

इसी क्रम में पंडित ज्ञानचंदजी बडवाह, खंडवा, बड़नगर और ललितपुर भी पधारे। सर्वत्र आपके प्रवचनों का लाभ समाज ने भरपूर लिया तथा श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को सहयोग किया, जिससे पुरानी उगाही के साथ-साथ नवीन रकम भी प्राप्त हुई। सर्वत्र मिलाकर कुल सत्तानवें हजार रुपये का सहयोग प्राप्त हुआ।

आवश्यक सूचनाएँ

(१) दिगम्बर जैन महासमिति के कार्यक्रमानुसार महाराष्ट्र की शाखा ने स्थानीय मंदिरों एवं संस्थाओं की जानकारी संकलित करने का निश्चय किया है। अत: महाराष्ट्र प्रांत में जहाँ दिगम्बर जैन मंदिर एवं जिन प्रतिमाएँ हैं, वहाँ के प्रमुख अपने यहाँ की मंदिरों संबंधी जानकारी निम्न पति पर भेजें—

— धन्यकुमार बेलोकर, संयोजक, दि० जैन महासमिति, महाराष्ट्र शाखा
द्वारा महावीर ब्रह्मचर्याश्रम, मु०पो० वीरवाडी कारंजा, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

(२) श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर की ग्रीष्मकालीन परीक्षाएँ दिनांक १५ व १७ मई, १९७८ को सानंद संपन्न हो चुकी हैं, तथा इसके साथ ही १९७८-७९ का सत्र प्रारंभ हो गया है।

जो पाठशालाएँ अनुदान चाहती हैं, वे अनुदान प्राप्ति हेतु निर्धारित फार्म भरकर तत्काल भेजें। अनुदान फार्म सबको भेजे जा चुके हैं। **— मंत्री, परीक्षा बोर्ड**

(३) श्री वीतराग-साहित्य सदन, दिल्ली द्वारा तीन माह के अल्प समय में ही १६०० रुपए से अधिक का धार्मिक साहित्य बिका है। इस साहित्य सदन में भारतवर्ष की सभी संस्थाओं से प्रकाशित होनेवाला साहित्य उपलब्ध है। स्वाध्याय प्रेमी बन्धु अधिक से अधिक पुस्तकें मंगाकर लाभ उठावें। **— सुरेन्द्रकुमार जैन,** १२, न्यू कालोनी, मॉडल बस्ती, दिल्ली-११०००५

जयपुर : दिनांक २०-७-७८ को अ०भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में वीरशासन जयंती के उपलक्ष्य में श्री तेजकरणजी डंडिया की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों एवं अन्य वक्ताओं ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। समारोह के मुख्य अतिथि श्री पूनमचंदजी गोदीका थे। अंत में श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल का सारगर्भित भाषण हुआ।

— अखिल बंसल, महामंत्री

इंदौर (म०प्र०) : अष्टाह्निका पर्व के पावन अवसर पर श्री दिगम्बर जैन रामाशाह मंदिर में नंदीश्वरद्वीप बावन पूजा मंडल-विधान का अपूर्व आयोजन किया गया। इस अवसर पर दाहोद से पधारे आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित कन्नुभाई के प्रातः परमात्मप्रकाश पर, दोपहर में कलशटीका पर, तथा रात्रि में समयसार पर सारगर्भित प्रवचन हुए। प्रतिदिन प्रातः पूजन एवं रात्रि में भक्ति का कार्यक्रम भी चलता था। अंत में दिनांक २०-७-७८ को पंडित नाथूरामजी शास्त्री की अध्यक्षता में वीरशासन जयंती का आयोजन किया गया, जिसमें पंडित रतनलालजी एवं पंडित कन्नुभाई ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। **— मनोहरलाल काला**

मौ (म०प्र०) : अष्टाह्निका पर्व के प्रसंग पर पंडित गेंदालालजी शास्त्री के सान्निध्य में सिद्धचक्र मंडल विधान सानंद संपन्न हुआ। प्रतिदिन चार समय आलापपद्धति, मोक्षमार्ग-प्रकाशक, कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथों पर प्रवचन तथा शंका समाधान कार्यक्रम चलता था।

— पूरनचंद जैन

सहारनपुर (उ०प्र०) : श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के विशेष आग्रह पर श्रीमान् ब्र० लाभानंदजी चातुर्मास के लिये पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचन बड़ी ही सरल तथा सुबोध शैली में होते हैं। समाज के अनेक भाई-बहन प्रतिदिन आपके प्रवचनों में सोत्साह सम्मिलित होते हैं। **— देवचंद्र जैन**

नागपुर (महाराष्ट्र) : श्री दिगम्बर जैन परवार मंदिर में १३-७-७८ से २०-७-७८ तक सौ० किरनरानी शीलचंद जैन की ओर से सिद्धचक्र विधान का आयोजन किया गया। स्थानीय विद्वान पंडित ताराचंदजी शास्त्री एवं श्री राकेशकुमारजी, जयपुर द्वारा पूजन-विधान, प्रवचन एवं भक्ति के कार्यक्रम आयोजित किये गये। दिनांक २१-७-७८ को शोभायात्रा का आयोजन किया गया। **— निर्मलकुमार जैन, मंत्री**

सागर (म०प्र०) : अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर दिनांक १३-७-७८ से २०-७-७८ तक पंडित शिखरचंदजी बड़ौत के पधारने से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। प्रतिदिन ५ बार समयसार एवं मोक्षमार्ग प्रकाशक पर हुए आपके प्रवचनों में श्रोताओं ने अधिक से अधिक संख्या में आकर तत्त्वप्रचार को समझने की तीव्र जिज्ञासा प्रकट की। आपने जैनधर्म के गूढ़ सिद्धांतों को उत्तम शैली में समझाया जिससे स्थानीय समाज के अनेक भाईयों ने सोनगढ़ शिविर में पहुँचने की जिज्ञासा दिखाई। **— मन्नूलाल जैन, एडवोकेट**

उदयपुर (राज०) : अष्टाह्निका पर्व बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इन दिनों दोनों समय परमात्मप्रकाश एवं पुरुषार्थसिद्धयुपाय पर प्रवचन होते थे। अंतिम तीन दिनों में पंडित रमेशकुमारजी जयपुरवाले भी पधारे। चतुर्दशी के दिन आत्मार्थी नवयुवक मंडल द्वारा सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। इस अवसर पर स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। **— भरतबंडी, मंत्री**

भोपाल (म०प्र०) : स्थानीय श्री दिगम्बर जैन नेमिनाथ झिरनों के मंदिर पर दिनांक १-७-७८ से ८-७-७८ तक श्री सिद्धचक्र मंडलविधान पंडित धन्नालालजी ग्वालियर तथा ब्रह्मचारी हेमराजजी के सान्निध्य में धूमधाम में संपन्न हुआ। प्रातः तथा सायंकाल शास्त्र-प्रवचन तथा रात्रि में भक्ति-संगीत आदि के कार्यक्रम चलते थे। नौ दिन के आध्यात्मिक वातावरण से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई। इस अवसर पर ४२ हजार रुपयों का दान कमरों के निर्माण एवं साहित्य मंगाने हेतु प्राप्त हुआ। **— डालचंद जैन**

पाठकों के पत्र

वाराणसी (उ०प्र०) से पंडित अमृतलालजी शास्त्री लिखते हैं—

'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक प्राप्त हुई। इस उपादेय सुंदर पुस्तक को पाकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। आशा है पुस्तक को पढ़कर पाठक लाभ उठायेंगे और वचनामृत के पान से संतृप्त होंगे।

जबलपुर (म०प्र०) से श्री हरिश्चंद्रजी लक्ष्मी भंडारवाले लिखते हैं —

भेंटस्वरूप पुस्तक 'बहिनश्री के वचनामृत' प्राप्त हुई। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। एक-एक वचन आत्म-कल्याण के लिये परम उपकारी है।

नागौद (म०प्र०) से श्री अमृतलालजी जैन लिखते हैं—

'बहिनश्री के वचनामृत' पढ़कर बहुत प्रभावित हुआ। इस पुस्तक में धर्म संबंधी अनेक विशेषताएँ हैं।

गुलवर्गा (कर्नाटक) से श्री बालचंदजी कोठारी एडवोकेट लिखते हैं —

'बहिनश्री के वचनामृत' संग्रहित कर बहुत सराहनीय कार्य किया है। पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के चरणों में विनयपूर्वक वंदन करता हूँ, जिनकी छत्रछाया में डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल, आत्मधर्म का संपादन एक योजनाबद्ध तरीके से कर रहे हैं, जिसके कारण यह पत्रिका बहुत लोकप्रिय हो रही है।

दाहोद (गुजरात) से कु० बिंदु कोठारी लिखती हैं—

आत्मधर्म के लेख सरल, सुबोध और सुंदर दृष्टांतसहित होने से हृदयंगम होते हैं। संपादकीय बहुत अच्छा लगता है। समयसार और नियमसार के प्रवचन विशेष अनुभवरस की मस्ती से भरपूर होते हैं। 'ज्ञान-गोष्ठी' पढ़ते समय ऐसा लगता है मानो साक्षात् स्वामीजी प्रश्नों के उत्तर दे रहे हों।

वाराणसी से डॉ० दरबारीलालजी कोठिया, भूतपूर्व अध्यक्ष, भा० दि० जैन विद्वद्वपरिषद् लिखते हैं—

जब से आपने आत्मधर्म को सम्हाला है तब से उसमें काफी निखार आया है और उसमें मूलवस्तु का विवेचन रहते हुए भी उपेक्षित व्यवहार का सामंजस्य भी प्रतिपादित होने

लगा है। आपके इस दिशा में किये गये प्रयत्न और कठोर परिश्रम श्लाघ्य हैं।

इसी अंक में संपादकीय में आपने जिसप्रकार उत्तम आकिंचन पर अनुशीलन प्रस्तुत किया है, उसीप्रकार आभ्यंतर से संबंध रखनेवाले बाह्य पर और बाह्य से संबंध रखनेवाले आभ्यंतर पर आपके द्वारा अनुशीलन प्रस्तुत करते रहना चाहिए। मुझे आपका यह अनुशीलन अच्छा लगा। भाषा और शैली, विषय और विवेचन—सभी उपादेय हैं।

आपके इस विचार और प्रयत्न की भी मैं सराहना करता हूँ कि श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय में न्यायप्रथमा, न्यायमध्यमा, न्यायतीर्थ व जैनदर्शन शास्त्री-आचार्य का अध्ययन-अध्यापन चालू कर रहे हैं। इसके लिये मेरी हार्दिक मंगलकामनाऐं हैं। आपका प्रयत्न अवश्य सफल होगा।

मुझे आशा है आप एक ऐसे माध्यम बन सकते हैं जिससे चौड़ी हो रही खाई पाटी जा सकती है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें—

(१) ५ अगस्त तक जिन ग्राहकों का शुल्क कार्यालय में प्राप्त हो चुका है, उन सभी को जुलाई तथा अगस्त के आत्मधर्म भेजे जा चुके हैं।

(२) इस अंक से सभी ग्राहकों को नये ग्राहक नंबर दिये जा रहे हैं। कृपया आत्मधर्म पर छपी स्लिप से नया ग्राहक नंबर अवश्य नोट कर लें तथा पत्रव्यवहार करते समय यह नया ग्राहक नंबर लिखें।

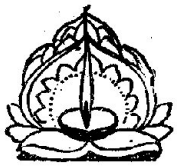

पूज्य श्री आचार्य जयसागरजी की सद्प्रेरणा

अमीनगर (उ०प्र) : परमपूज्य १०८ श्री आचार्य जयसागरजी तथा श्री आदिसागरजी महाराज चातुर्मास हेतु यहाँ विराजमान हैं। मुनिराजश्री कहते हैं कि 'आत्मधर्म' में सच्चा भेदज्ञान आदि तत्त्वचर्चा आती है, जिसके निमित्त से यदि अपना उपयोग आत्मा में लगायें तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है। यह पत्रिका सभी को मंगाना चाहिये। महाराज के उपदेश से अनेक आत्मधर्म के ग्राहक बने तथा स्थानीय जैन समाज ने निम्न प्रतिज्ञाएँ धारण कीं –

१. शादियों व सामाजिक दावत में आलू, गोभी तथा दही का रायता बनाना वर्जित है।

२. फेरे तथा होम रात्रि में नहीं करना।

३. दावत में चीनी के कप-प्लेट का प्रयोग नहीं करना तथा जीमण का कार्य वैश्य या उच्च वर्ण से कराना।

४. शादी की व सामाजिक दावत रात्रि में नहीं देना।

— जगदीशप्रसाद जैन, ओर से दि० जैन समाज, अमीनगर सराय

खण्डवा (म०प्र०) : तेरहद्वीप मंडल विधान के आयोजन पर पंडित केसरीचंदजी 'धवल' पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रभावशाली प्रवचनों से समाज ने अच्छा धर्मलाभ लिया। पंडित विनयकुमारजी 'पथिक' के आध्यात्मिक भजनों का भी आयोजन किया गया।

— जुगमंदरलाल जैन, एडवोकेट

बरायठा : दिनांक १३-७-७८ से २०-७-७८ तक अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर ब्रह्मचारी बाबूलालजी द्वारा सिद्धचक्र मंडल विधान सानंद संपन्न हुआ। दो दिन के लिये पंडित केशरीमलजी भी पधारे। प्रतिदिन चार समय उक्त विद्वानों के प्रवचन होते थे।

— विजयकुमार शास्त्री

बम्बई में पंडित लालचंदभाई के प्रवचन

बम्बई : अत्यंत हर्ष का विषय है कि विद्वद्वर्य पंडित लालचंदभाई मोदी ने स्थानीय सीमंधर जिनालय, जवेरी बाजार में प्रत्येक रविवार को प्रवचन करने की स्वीकृति प्रदान की है। अत: धर्मप्रेमी मुमुक्षु भाई उनके अमूल्य प्रवचनों का लाभ उठावें।

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि अरे जीव! तू शांत हो, धैर्य रख...। दूसरे का किंचित् दु:ख देखकर एकाकाररूप से तुझे ऐसा लगता है कि मैं उसका दु:ख दूर कर दूँ। किंतु हे भाई! संपूर्ण जगत के सर्व जीवों के दु:ख क्या हम नहीं देखते? जगत के जीवों का दु:ख देखते हुए भी हमें ऐसी रागवृत्ति नहीं उठती कि 'मैं इनका दु:ख दूर कर दूँ।' पर के दु:ख का ज्ञान तो है, किंतु रागबुद्धि नहीं होती। इसलिए (हमारा उदाहरण लेकर) हे जीव! तू समझ कि आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान ही है; राग हो वह आत्मा का स्वभाव नहीं है।

पर को दु:खी देखकर राग हो या राग के कारण जीव पर का दु:ख दूर कर सके—ऐसा वस्तुस्वरूप नहीं है। ऐसा वस्तुस्वरूप जानने पर भी ज्ञानी को भी जो करुणा की शुभवृत्ति उठती है, वह अपनी अस्थिरता के कारण उठती है।

अरे रे! यह अज्ञानी जीव अपने आनंदनिधान को भूलकर संसाररूपी दु:खसागर में डूब रहे हैं; वे अपने आनंदनिधान को पहिचानें तभी उनका दु:ख दूर हो—ऐसी अनुकम्पा ज्ञानी को भी राग के समय आती है, किंतु उस अनुकम्पा के कारण 'मैं पर का दु:ख मिटा दूँ'—ऐसा वे नहीं मानते। क्योंकि वे जानते हैं कि जगत के जीवों को जो दु:ख है, वह किन्हीं संयोगों के कारण नहीं है, किंतु वे जीव स्वयं अपने आनंदस्वभाव को भूले हैं इसलिए दु:खी हैं और वे स्वयं अपने आनंदस्वरूप को पहिचानकर उसमें एकाग्र हों तो उनका दु:ख दूर हो सकता है।

उसके बदले दूसरा जीव माने कि 'मैं उनका दु:ख दूर कर दूँ' अथवा संयोग अनुकूल मिल जाए तो वे सुखी होंगे तो वह जीव दूसरे का दु:ख तो नहीं मिटा सकता किंतु उस मिथ्या अभिप्राय के कारण वह जीव स्वयं दु:खी होता है।

— आत्मधर्म, वर्ष १४, अंक १६३, नवंबर, १९५८, पृष्ठ ३०४

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

मोक्षमार्गप्रकाशक		प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४